दो सौ रुपये का चमत्कार

[प्रेरणादायी धार्मिक-सामाजिक कहानी]



श्री शान्ति मुनि



प्रकाशक :

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर

पुस्तक

दो सौ रुपये का चमत्कार

लेखक

श्री शान्ति मुनि

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, बीकानेर-३३४००१ (राज.)

मूल्य : पांच रुपये मात्र
द्वितीय अनावरण : १९८६

मुद्रक

जैन आर्ट प्रेस
समता भवन,
बीकानेर-३३४००१

समर्पण

अनन्त अनन्त उपकृति के केन्द्र

प्रखरतम वाग्मी

पौराणिक कथाकोश के

अनुपम संगायक

आराध्य देव

आचार्य श्री नानेश

के

परमपूत पाद पद्मों में

—शान्ति मुनि



मर्यादा ही उत्तम आचरण का सुरक्षा-कवच है। प्रभु महावीर का संदेश है कि आचरण की धारा सम्यक् ज्ञान के चट्टानी तटबंधों में ही मर्यादित रहनी चाहिये।

आचार्य गुरुदेव गणेशीलालजी म. सा. ने श्रमण संस्कृति की सुस्थिति एवं उन्नयन के लिए 'शांत क्रांति' का अभियान चलाया। इस अभियान को ओजस प्रदान करना साधुवर्ग का दायित्व है। इसके लिए साधुवर्ग को जहां साधना के पथ पर अविचल रूप से आरूढ़ रहना है वहीं अपनी साधनागत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति द्वारा सामान्यजन के लिए सुदृढ़ साधना-सेतु का निर्माण भी करते चलना है। शांत क्रांति आत्म-साधना से ही परात्म-साधना के उदय का अभियान है, जो आत्म पक्ष, परात्म पक्ष एवं परमात्म पक्ष, तीनों को उजागर करने में समक्ष है। साधु एवं साध्वी समाज ने विगत बीस वर्षों में सम्यक् ज्ञानार्जन की दिशा में अच्छी दूरी तय की है। रथ बढ़ रहा है, पथ भी प्रशस्त हो रहा है—

—आचार्य श्री नानेश

प्रकाशकीय

जिन शासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक, समता विभूति, आचार्य प्रवर श्री १००८ श्री नानालाल जी म. सा. के विद्वान् शिष्य पंडित रत्न श्री शान्ति मुनि जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। आप प्रखर वक्ता होने के साथ-साथ सफल साहित्य-साधक भी हैं। आपकी वाणी और लेखनी में प्रभावकारी शक्ति और सहृदयता का सुन्दर सामंजस्य है।

साहित्य की विविध विधाओं में यथा उपन्यास, जीवनी, गद्यकाव्य, कविता, समीक्षा आदि के क्षेत्र में आपकी कई कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। आपकी साहित्य-साधना सतत गतिमान है।

प्रस्तुत कृति 'दो सौ रुपये का चमत्कार' प्रेरणादायी धार्मिक सामाजिक कहानी है। ७ परिच्छेदों में लिखित इस कृति में दान की महिमा और उसके माध्यम से ममत्व त्याग तथा अनासक्ति भावना के विकास का रोचक एवं मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

गुणचन्द्र अपनी शालीनता, कर्त्तव्यनिष्ठा, कार्यक्षमता, ईमानदारी, धार्मिक सुदृढ़ता, मितव्ययिता, साहसशीलता, विनम्रता, सेवाभावना, वचन-निर्वाह, उदारता आदि गुणों के कारण अपने भाग्य को बदल देता है। वह सेठ भागचन्द का उदार सहयोग पाकर अपनी सत्यनिष्ठा

और त्याग भावना के फलस्वरूप ऐसा पारस पत्थर प्राप्त करने में सफल होता है जिसका स्पर्श पाकर लोहा सोना बन जाता है। सचमुच दान देने अर्थात् ममत्व-त्याग में वह शक्ति और चमत्कार है कि जिससे लोहवत् तुच्छ जीवन भी स्वर्णिम और दिव्य बन जाता है। यह चमत्कार मात्र दैवयोग नहीं वरन सच्चे पुरुषार्थ द्वारा भाग्य बदलने की कथा है। कहानी की भाषा सरल, सरस और हृदयसंवेद्य है। आदि से अन्त तक उत्सुकता बनी रहती है।

इसके प्रथम संस्करण में साहित्य समिति संयोजक एवं संघ के पूर्व अध्यक्ष श्री गुमानमलजी सा. चोरड़िया ने अपनी स्वर्गीया मातुश्री श्रीमती सोना देवी की पुण्य स्मृति में आर्थिक सहयोग प्रदान किया है एतदर्थ संघ उनका आभारी है।

आशा है, इस कथानक का पठन-पाठन जीवन और समाज में त्याग व सेवा भावना जागृत करने में प्रेरक सिद्ध होगा।

चुन्नीलाल मेहता — अध्यक्ष

धनराज बेताला — मंत्री

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

अपूर्व सेवामूर्ति धर्मपरायणा श्रीमती मीनादेवी चौरड़िया

जयपुर की धर्मनिष्ठ, उदारचेता श्रावक स्वर्गीया श्रीमती मीनादेवी चोरड़िया आदर्श महिलारत्न थीं। आपके पिता श्री मगनमलजी बोथरा समाज के सुप्रतिष्ठित धर्मनिष्ठ श्रावक थे। आपका विवाह जयपुर समाज के अग्रणी श्रावक श्री केशरीमल जी चोरड़िया के सुपुत्र प्रसिद्ध जोहरी श्री सरूपचन्दजी चोरड़िया के साथ हुआ। पितृपक्ष एवं ससुराल पक्ष दोनों परिवारों के धार्मिक संस्कारों और आदर्श वातावरण से श्रीमती मीना देवी के जीवन में तप, त्याग, सहिष्णुता और निष्काम सेवा भावना की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई और वे आदर्श महिला-जीवन की प्रतीक बन गईं। सेवा, स्वधर्मी-वात्सल्य तथा गुप्तदान प्रारम्भ से ही आपके जीवन के अंग रहे।

वैभव सम्पन्न परिवार में जन्म लेकर भी और चारों ओर भौतिक सुख-सुविधाओं की सामग्री होते हुए भी आपने "सादा जीवन उच्च विचार" को ही अपना आदर्श जीवन-सूत्र बनाया। आपके व्यवहार में शालीनता, वाणी में माधुर्य, हृदय में अजस्र करुणा और पग-पग पर आत्मीयतापूर्ण स्नेह सागर लहराता सा रहता था। समाज की अनेक महिलाओं को अपने स्नेह, सेवा और सहयोग का सम्बल देकर आपने उन्हें स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बनाया। आप प्रत्येक के सुख-दुःख में

पथ-प्रदर्शिका बनकर उन्हें अपना वात्सल्य और प्रेम बांटती थीं ।

सन्त-सतियों के प्रति आपकी अनन्य श्रद्धा और अटूट भक्ति थी । सन्तों की सेवा में आप अग्रणी रहती थीं। आपको सामायिक और स्वाध्याय के प्रति विशेष रुचि थी । आपने अपने जीवन में कई प्रकार के त्याग और प्रत्याख्यान ले रखे थे । आप आदर्श तपस्विनी थीं । आपने कई अठाइयां, ग्यारह, पन्द्रह तथा मासखमण की तपस्याएं कीं । ४ अगस्त १९८३ को ७२ वर्ष की आयु में संथारापूर्वक आपका स्वर्गवास हुआ ।

आपके धर्मपरायण व्यक्तित्व और सेवाभावी जीवन का प्रभाव आपके पूरे परिवार में परिलक्षित होता है। आपके तीनों पुत्र सर्व श्री गुमानमलजी बोरदिया (पूर्व अध्यक्ष श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ) उमरावमलजी बोरदिया एवं राजमलजी बोरदिया तथा सुपुत्री श्रीमती प्रेमलता [illegible] सामाजिक, धार्मिक शैक्षणिक तथा चिकित्सा सम्बन्धी बहुविध सेवा कार्यों एवं लोक कल्याणकारी विविध प्रवृत्तियों में संलग्न है । आपके तीन पुत्र और एक पुत्री के अलावा पौत्र पौत्रियों का [illegible] भरा पूरा परिवार सेवा और [illegible] का जीवन्त प्रतीक है ।

आपकी पुण्य स्मृति में आपके परिवार द्वारा इस पुस्तक के प्रकाशन में जो आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है, उसके लिए श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ [illegible] है ।

कहानी की कहानी

प्रिय बाल बन्धुओ ! मैं नहीं, दुनिया के सभी विचारक मानते हैं कि साहित्य की अनेक विधाओं में कथा-कहानी की विधा ही बालकों की सर्वाधिकप्रिय विधा है । मेरी दृष्टि में तो बालकों की ही नहीं, बड़े-बूढ़ों एवं युवकों को भी कहानी अति प्रिय लगती है । मेरा अनुभव है कि साहित्य की अन्य विधाओं से जो तन्मयता पैदा नहीं होती, वह कहानी से हो जाती है । कई बार ऐसी कहानी हाथ लग जाती है कि उसे पूरा पढ़े बिना छोड़ने की इच्छा ही नहीं होती है । मैंने बड़े-बड़े विद्वानों, लेखकों, वक्ताओं एवं श्रोताओं को लिखते-पढ़ते और सुनते देखा है । यही नहीं, बहुत से उच्च-कोटि के विद्वान् कहानी लेखक ही होते हैं । वे कहानी के अलावा और कुछ लिखते ही नहीं ।

कहानी प्रीतिकर इसलिये लगती है कि उसमें क्रमबद्ध सरसता तो होती ही है, कई बार उसमें हमारा जीवन ही चित्रित-सा लगता है । कहानी इसलिये भी

पथ-प्रदर्शिका बनकर उन्हें अपना वात्सल्य और प्रेम बांटती थीं।

सन्त-सतियों के प्रति आपकी अनन्य श्रद्धा और अटूट भक्ति थी। सन्तों की सेवा में आप अग्रणी रहती थीं। आपको सामायिक और स्वाध्याय के प्रति विशेष रुचि थी। आपने अपने जीवन में कई प्रकार के त्याग और प्रत्याख्यान ले रखे थे। आप आदर्श तपस्विनी थीं। आपने कई अठाइयां, ग्यारह, पन्द्रह तथा मासखमण की तपस्याएं कीं। ४ अगस्त १९८३ को ७३ वर्ष की आयु में संथारापूर्वक आपका स्वर्गवास हुआ।

आपके धर्मपरायण व्यक्तित्व और सेवाभावी जीवन का प्रभाव आपके पूरे परिवार में परिलक्षित होता है। आपके तीनों पुत्र सर्व श्री गुमानमलजी चोरड़िया (पूर्व अध्यक्ष श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ) उमरावमलजी चोरड़िया एवं राजमलजी चोरड़िया तथा पुत्री श्रीमती प्रेमलता नवलखा सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक तथा चिकित्सा सम्बन्धी बहुविध सेवा कार्यों एवं लोक कल्याणकारी विविध प्रवृत्तियों में अग्रणी हैं। आपके तीन पुत्र और एक पुत्री के अलावा चार प्रपौत्रों से युक्त भरा पूरा परिवार सेवा और वात्सल्य भावना का जीवन्त प्रतीक है।

आपकी पुण्य स्मृति में आपके परिवार द्वारा इस पुस्तक के प्रकाशन में जो आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है, उसके लिए श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ आभारी है।

कहानी की कहानी

प्रिय बाल बन्धुओ ! मैं नहीं, दुनिया के सभी विचारक मानते हैं कि साहित्य की अनेक विधाओं में कथा–कहानी की विधा ही बालकों की सर्वाधिकप्रिय विधा है । मेरी दृष्टि में तो बालकों की ही नहीं, बड़े-बूढ़ों एवं युवकों को भी कहानी अति प्रिय लगती है । मेरा अनुभव है कि साहित्य की अन्य विधाओं से जो तन्मयता पैदा नहीं होती, वह कहानी से हो जाती है । कई बार ऐसी कहानी हाथ लग जाती है कि उसे पूरा पढ़े बिना छोड़ने की इच्छा ही नहीं होती है । मैंने बड़े-बड़े विद्वानों, लेखकों, वक्ताओं एवं श्रोताओं को लिखते-पढ़ते और सुनते देखा है । यही नहीं, बहुत से उच्च–कोटि के विद्वान् कहानी लेखक ही होते हैं । वे कहानी के अलावा और कुछ लिखते ही नहीं ।

कहानी प्रीतिकर इसलिये लगती है कि उसमें क्रमबद्ध सरसता तो होती ही है, कई बार उसमें हमारा जीवन ही चित्रित-सा लगता है । कहानी इसलिये भी

अच्छी लगती है कि वह हमारे हृदय को सीधे छूती है। उसमें करुणा, शौर्य, भावुकता एवं विह्वलता सभी सन्निहित होते हैं। यही कारण है कि सामान्य मुनि ही नहीं, विश्रुत विद्वान् आचार्य भी अपने उपदेश कथा-कहानी के माध्यम से ही जन-जन के हृदय में बिठाते हैं। यही नहीं, स्वयं भगवान् महावीर ने अपने उपदेश-आगमों में अनेक आगम, कथा के रूप में ही प्रतिपादित किये हैं।

यद्यपि कहानी सब प्रकार के व्यक्तियों को प्रभावित करती है, फिर भी बालकों की तो वह अपनी थाती है। नानी से कहानी सुनने की परम्परा बालकों की सदा से रही है। बच्चों को कहानी सर्वाधिक प्रिय रही है।

किन्तु खेद है कि आज कहानी की स्थिति बिगड़ती जा रही है। आज नानी की कहानी तो दूभर हो गई और बाल-पाकेट-बुक्स के रूप में जासूसी सनसनी से विकार भरी कहानियों का बोलबाला बढ़ गया है।

अभी आपको बताया कि कहानी सीधे हृदय को छूती है। नानी की कहानियों में वे उदात्त-उदार महान् संस्कार होते थे कि बालकों के कोमल हृदय की गहराई तक बैठ जाते थे। नानी कहानी के माध्यम से

बालकों के हृदय में अपनी उदात्त पुरातन संस्कृति को उतार देती थीं उनमें धर्म प्रेम, देशभक्ति, चारित्र-निष्ठा, कर्तव्य पालन आदि के संस्कार समावेश पाते थे। इधर आज की इन उपन्यास टाइप बाल-कहानियों में प्रायः धर्म-द्वेष, चारित्र पतन, देश के प्रति गद्दारी, चोरी-डाकेजनी, व्यभिचार जैसे संस्कारों का बाहुल्य रहता है। यही कारण है कि हमारी पिछली पीढ़ी जीवन-पतन के इन्हीं मार्गों पर गतिशील हो रही है। आज शहरी बस्तियों के प्रायः प्रत्येक बालक के हाथ में बाल पाकेट बुक्स देखने को मिल जाएंगी, जिनसे उनका जीवन विपरीत संस्कारों से ग्रसित हो जाता है।

यह हम जानते हैं कि बच्चों को कहानियां प्रिय होती है। फिर हम बच्चों के समक्ष ऐसी कहानियां भी प्रस्तुत कर सकते हैं, जो उन्हें जीवन के उच्चतम आदर्शों की ओर ले जाएं। उनसे हमारी संस्कृति के उदात्त संस्कारों का बीजारोपण तथा त्याग की भावनाओं का निर्माण हो सकता है।

प्रिय बाल बन्धुओ! एक ऐसी ही त्याग-प्रधान, बोध पूर्ण एवं रुचिकर कहानी आपके समक्ष प्रस्तुत है। इसके पीछे भावना एक ही है कि आप इस कहानी के माध्यम से कहानी के प्रमुख पात्र गुणचन्द्र की तरह गुणी

बनकर अपनी संस्कृति के आदर्श पथ पर चलने का प्रयास करें।

यदि आपने इस कृति से कुछ भी शिक्षा-संस्कार ग्रहण किये, तो मेरा श्रम सार्थक होगा।

महावीर भवन,
ब्यावर

—शान्तिमुनि



उत्थानिका

प्रिय बालको ! मैं आज एक कहानी बताने जा रहा हूं, जो बड़ी प्रीतिकर, मजेदार साथ ही शिक्षाप्रद है। आप जानते हैं, भारत की संस्कृति त्याग-प्रधान संस्कृति रही है। हमारी इस संस्कृति में भोग की नहीं योग-त्याग की पूजा होती आई है। हमारी इस संस्कृति में राजा, महाराजा एवं सत्ताधीशों को वह सम्मान कभी नहीं मिला है, जो त्यागियों को मिला है। महावीर, राम कृष्ण एवं बुद्ध को जो सम्मान हमारी संस्कृति ने दिया, वह उनके त्याग के कारण ही दिया है।

और यह सर्वथा उचित भी है। आप जानते हैं। नहीं जानते हों, तो जानलें कि हमारे इस जीवन का उद्देश्य मोक्ष के परम आनन्द को प्राप्त करना है, और वह मिलता है त्यागमयी योग-साधना के द्वारा ही। मनुष्य बाह्य वैभव से जितना चिपका रहता है, उतना वह त्याग-साधना से वंचित होकर भोग प्रवृत्त होता है और उतनी ही मात्रा में मोक्ष के सच्चे और स्थायी

आनन्द से दूर होता जाता है। हम सभी यही चाहते हैं कि हमें जीवन में आनन्द ही आनन्द मिले, दुःख के काले-कजरारे बादल हमारे जीवन पर नहीं मण्डराएं तो हमें भोग की ओर नहीं, त्याग की ओर ही बढ़ना होगा। उसी के द्वारा हम सच्ची शान्ति, जो कभी छूटती नहीं, प्राप्त कर सकते हैं।

तो अब आप समझ गये होंगे कि हमारी संस्कृति ने त्याग-साधना एवं त्यागी महापुरुषों को ही क्यों पूजनीय एवं वन्दनीय माना है, हमारे धर्मशास्त्रों में त्याग की महिमा के गीत क्यों गाये जाते हैं। यह बात आप अपने कोमल मानस में अच्छी तरह जमालें कि सच्चे सुख का प्रमुख द्वार त्याग–मार्ग ही है। अतः जो सम्पन्न भौतिक सुख-समृद्धि से भरे वैभव को मन से ठोकर मार कर त्याग-मार्ग की कठोर साधना पर निकल पड़ते हैं, वे निश्चित ही पूजनीय-अभिवन्दनीय बन जाते हैं। ऐसे महापुरुष हमारे सामने एक उज्ज्वल आदर्श स्थापित कर जाते हैं। अतएव उन्हें देखकर हमारा मस्तिष्क सहज ही श्रद्धा से झुक जाता है। हमारा मन अन्दर ही अन्दर उन्हें कोटि–कोटि धन्यवाद देने को लालायित हो उठता है।

इस त्याग-मार्ग के अनेक रूप हैं। उनमें दो मुख्य हैं, एक सर्वस्व का त्याग और दूसरा अल्प का त्याग। सर्वस्व का त्याग करने वाला धन, वैभव, परिवार,

मकान, जमीन सभी कुछ छोड़कर अकिंचन साधु बन जाता है। उसका न कोई घर-द्वार होता है और न कोई परिवार। सम्पूर्ण संसार उसका घर होता है और प्राणिमात्र उसका परिवार। सही अर्थों में वह सर्वस्व का त्यागी छोटे से घर-परिवार के दायरे से ऊपर उठकर समस्त जगत में आत्मीय भाव का निर्माण कर अपने जीवन को विराट् एवं महान् बना लेता है। ऐसे सर्वस्व के त्यागी का अपना कोई मठ-मन्दिर अथवा घर नहीं होता है। इसीलिये जैन शास्त्रों में उसे "अनगार" कहा गया है। अनगार का अर्थ है आगार याने घर से रहित और जिसका कोई घर नहीं, उसका परिवार कैसे हो सकता है? ऐसे ही सर्वत्यागी महापुरुषों को सन्त, साधु, मुनि, सन्यासी, महात्मा आदि शब्दों से सम्बोधित किया जाता है।

दूसरी कोटि का अल्प त्याग करने वाला व्यक्ति सम्पूर्ण वैभव एवं परिवार का त्याग नहीं करता है। फिर भी वह हिंसा, झूठ और चोरी जैसे बड़े-बड़े पापों को छोड़ता है। अपना जीवन नैतिक एवं व्यवस्थित बनाता है, जिसे हम सद्गृहस्थ अथवा जैन परिभाषा के अनुसार श्रावक कहते हैं। मुनि अथवा सर्वत्यागी पांच महाव्रतों को स्वीकार करता है, तो सद्गृहस्थ अथवा श्रावक कुछ छोटे-छोटे नियमों-व्रतों को स्वीकार करता है, जिन्हें अणुव्रत कहा जाता है।

चूंकि गृहस्थ जीवन में रहने वाला व्यक्ति पूर्ण अपरिग्रही नहीं होता है, अतः परिग्रह की सीमा-मर्यादा करता है है और अधिक धन का त्याग-दान करता है। उसकी साधना के चार अंग बताए गए हैं—दान, शील, तप और भाव।

इनमें सबसे पहला अंग है दान। दान के महत्त्व के विषय में आप भली प्रकार से जानते होंगे कि दान जिसे हम त्याग भी कहते हैं, भारतीय जन-जीवन का अविभाज्य अंग है। उपनिषदों में 'अतिथि देवो भव' के रूप में अतिथि-सेवा का बहुत महत्त्व बताया गया है। भगवान् महावीर ने सद्गृहस्थ की चर्या के बारह व्रतों में अन्तिम व्रत को अतिथि संविभाग व्रत नाम दिया है। सद्गृहस्थ के जीवन में अपने भोज्य पदार्थों में अतिथि का भी संविभाग होता है। अतः सद्गृहस्थों के द्वार सन्त, महात्मा एवं दीन-दुखियों की सेवा के लिये सदा खुले रहते हैं। वे अतिथियों एवं दीन-दुखियों की सेवा करके बहुत प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, अपने आप को धन्य समझते हैं।

अपने देश के सांस्कृतिक इतिहास को उठाकर देखें, तो हमें ज्ञात होगा कि इस देश में कैसे-कैसे दानवीर हुए हैं, जिन्होंने समय पड़ने पर दीन-हीन जनता के लिये किस प्रकार अपने भण्डार खोल दिये थे। मैं आपको एक

ऐसे ही दानवीर किशोर की कहानी सुनाने जा रहा हूं, जिसने दो सौ रुपये प्रतिदिन दान की प्रतिज्ञा लेकर किस प्रकार उसे निभाया और अन्त में कितनी समृद्धि का स्वामी बन गया । तो आएं, अब हम कथा की ओर ही चलें ।

(१)

बात कुछ पुरानी है । एक नगर था । बहुत समृद्ध, बहुत रमणीय एवं मनोरम । नाम था उसका वसन्तपुर । यथा नाम तथा गुण की उक्ति के अनुसार वहां की जनता इतनी खुशहाल थी कि वहां सदा वसन्त की बहार की तरह सरसब्जता एवं आह्लादकता छाई रहती थी । वहां की जनता पाप भीरु एवं धर्माभिमुख थी, तो राजा प्रजावत्सल एवं न्याय प्रिय । उस नगर में अपराध बहुत कम होते थे और यदि इक्के-दुक्के अपराधी पकड़े जाते, तो राजा उन्हें ऐसे मनोवैज्ञानिक ढंग से शिक्षा देते कि वे पानी-पानी हो जाते और सहज रूप में अपराध प्रवृत्ति छोड़ देते । इस प्रकार समस्त प्रजा भय और आतंक से मुक्त थी । आप जानते हैं, जहां भय और आतंक नहीं होते हैं, वहां धर्म-साधना एवं परमात्मा-भक्ति की भावना सहज ही उत्पन्न हो जाती है ।

चूंकि राजा और प्रजा सभी धार्मिक वृत्ति से सम्पन्न थे, अतः वहां धर्म गुरुओं-महात्माओं का आगमन भी

होता रहता था। प्रजा एवं स्वयं राजा भी सन्त
महात्माओं के परम भक्त थे। उनके सदुपदेश का बहु
लाभ उठाते एवं उन उपदेशों को जीवन के आचरण
उतार कर आत्म-साधना एवं भक्ति-भावना के द्वा
आत्मा को पवित्र बनाने का प्रयास करते रहते।

एक बार एक उच्च कोटि के त्यागी एवं विश्
विद्वान् जैन आचार्य श्री विमल कीर्ति का बसन्तपुर नग
में अपने शिष्य-परिवार सहित पदार्पण हुआ। वे नग
के बाहर एक उद्यान में विराजित हुए।

मुनि दर्शन एवं धर्म-प्रवचन श्रवण के लिये जन
उमड़-घुमड़ कर जाने लगी। आचार्य श्री के धार्मि
प्रवचन होने लगे। प्रवचन इतने सुबोध एव मर्मस्प
होते कि जनता का आकर्षण बढ़ता गया और ऊंच नी
एवं जाति-सम्प्रदाय के भेद छोड़कर प्रवचन में उपस्थि
प्रतिदिन बढ़ती जाती। लोग केवल प्रवचन सुनते
नहीं, उसे अपने जीवन में उतारने का प्रयास भी क
और दुष्प्रवृत्तियों के त्याग एवं नियमित धर्म-साधना
अनेक प्रकार के संकल्प भी ग्रहण करते। प्रत्येक व्य
यथा-शक्ति कुछ न कुछ त्याग-संकल्प लेकर ही जात

एक दिवस आचार्य प्रवर का प्रवचन धारा प्र
चल रहा था। प्रवचन का विषय था—दान धर्म
महत्व। प्रवचन विश्लेषणात्मक एवं मर्मस्पर्शी थ
श्रोता चकोरवत् मन्त्रमुग्ध हो सुन रहे थे।

आचार्य प्रवर दान का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते ए कह रहे थे— 'दान देने वाला व्यक्ति दान-पात्र को ता कम है, बल्कि लेता अधिक है। एक-दो रुपये का ान प्रतिदान के रूप में हजारों रुपये का आशीर्वाद ाप्त करता है। दान लेने वाला व्यक्ति न जाने कितनी ुभ भावनाओं का सम्प्रेषण करता जाता है। इस प्रति-ान के अतिरिक्त दान का सबसे बड़ा लाभ है—ममत्व ाव अथवा आसक्ति भाव का छूटना। हम जितनी ात्रा में दान करते हैं, उतनी मात्रा में उस सम्पत्ति के ति हमारा ममत्व समाप्त होता है, जो कि मुक्ति-साधना के लिये आवश्यक है।

दान का गम्भीर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सुनकर सभी श्रोता गद्‌गद् हो गये। प्रायः सभी ने यथा शक्ति कुछ र कुछ प्रतिदिन दान देने का संकल्प लिया। उसी सभा ें नगर-श्रेष्ठ श्री धनचन्द्र का सुपुत्र गुणचन्द्र उपस्थित ा। गुणचन्द्र अभी १८ वर्ष का युवक ही था, किन्तु था ह यथा नाम तथा गुण-सौम्य-शान्त एवं प्रकृति से प्रतिभद्र। चेहरे पर रूप लावण्य के साथ चन्द्र-सी शीतल-कान्ति झलकती थी। जीवन व्यावहारिक शिक्षण के ाथ आध्यात्मिक-धार्मिक शिक्षण एवं संस्कारों से भी ुसज्ज था। वह अपने शैशव काल से ही सन्त-महात्माओं के प्रवचनों का लाभ लिया करता था। आज के प्रवचन

ने उसके जीवन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया। प्रवचन का चातकवत-तल्लीनता से रसास्वादन करते हुए वह भावविभोर हो गया। उसकी हृदय-वीणा के तार झनझना उठे। प्रवचन समाप्ति के उपरान्त वह एक गहरे चिन्तन में डुबकियां लगाने लगा। उसके चिन्तन का मुख्य केन्द्र था—अपनी सम्पत्ति का सम्यक् उपयोग। वह सोचने लगा—"मेरे पिताजी के पास करोड़ों की सम्पत्ति है और मैं उनकी इकलौती सन्तान हूं। आखिर उस सम्पत्ति का उपयोग क्या होग ? अभी-अभी आचार्य प्रवर ने फरमाया कि सम्पत्ति के तीन उपयोग हैं—दान, भोग और नाश। सम्पत्ति का श्रेष्ठतम उपयोग है—उसका परमार्थ में, परोपकार के कार्यों में उपयुक्त होना। उसके पश्चात् उसका उपयोग है भोग अर्थात् अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं में उसे लगाना। इन दो के अतिरिक्त फिर उसका विनाश ही होता है। अस्तु मुझे अब आज से अपनी सम्पत्ति का श्रेष्ठतम कार्य परमार्थ में उपयोग करना चाहिये। अन्यथा यह भण्डारों में भरी पड़ी रह जाएगी और हम संसार से चले जाएंगे।"

गहरे चिन्तन में खोए-खोए उसे ध्यान ही नहीं रहा कि अन्य सभी श्रोता प्रवचन-स्थल से प्रस्थान कर चुके हैं। केवल दो-एक व्यक्ति आचार्य श्री के समक्ष खड़े कुछ नियम ग्रहण कर रहे थे। वह चौंकता हुआ-सा उठा और

मन ही मन कुछ निश्चय करता हुआ आचार्य प्रवर के समीप जा खड़ा हुआ। तब तक वे श्रोता भी, जो कुछ नियम ग्रहण कर रहे थे, जा चुके थे। अत्यन्त विनम्रता पूर्वक वन्दन कर गुणचन्द्र ने आचार्य प्रवर से निवेदन किया—"भगवन् ! आपके आज के प्रवचन ने मेरे मानस को अत्यन्त प्रभावित किया है। दान की इतनी मनोवैज्ञानिक विश्लेषणा मैंने प्रथम बार ही सुनी है। आज मेरा हृदय उत्प्रेरणा से भर गया है। मेरे मन में संकल्प जागृत हुआ है कि मुझे भी प्राप्त अवसर का कुछ लाभ उठा लेना चाहिये। अतः भगवन् ! आज मुझे प्रतिज्ञा करवा दीजिये कि जब तक मेरे पास सम्पत्ति रहेगी, अथवा सम्पत्ति पर मेरा अधिकार रहेगा, मैं २००/-रुपये प्रतिदिन दान करूंगा।"

आचार्य प्रवर ने युवक गुणचन्द्र की भावनाशीलता को समझते हुए उसका परिचय प्राप्त करने की जिज्ञासा की।

गुणचन्द्र ने बड़े शालीन शब्दों में परिचय देते हुए कहा—"भगवन्, मैं यहां के नगर श्रेष्ठि श्री धनचन्द्र का पुत्र हूं। मेरे पिताश्री अखूट सम्पत्ति के स्वामी हैं और नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में गिने जाते हैं। अपने पिता की इकलौती सन्तान होने के नाते उनकी समस्त चल-अचल सम्पत्ति का उत्तराधिकारी मैं ही हूं। अतः

मैंने विचार किया कि यह छोटी-सी प्रतिज्ञा मैं अच्छी तरह से निभा सकूंगा। फिर पिताश्री के पास इतना वैभव है कि मैं ही नहीं, मेरी सात पीढ़ी बैठे-बैठे खाए, तो भी समाप्त न हो। इसलिए आपश्री बिना किसी संकोच के मुझे यह प्रतिज्ञा करवा सकते हैं।"

आचार्य प्रवर ने कुछ समझाने के स्वरों में कहा—"आप का कहना यथार्थ है कि आपके पिताश्री बहुत श्रीमन्त है। किन्तु श्रीमन्त होने मात्र उदार वृत्ति आ जाय, यह आवश्यक नहीं है। बहुधा देखा यह जाता है कि अधिक धनवान व्यक्ति अधिक कंजूस होता है। धन संग्रह करना उसकी तमन्ना होती है। किन्तु संग्रह के साथ कृपणता का दुर्गुण भी बढ़ जाता है। मैं यह नहीं कहता कि आपके पिताजी भी इसी श्रेणी के होंगे। किन्तु किसी भी, प्रतिज्ञा के पूर्व अपनी क्षमता का निरीक्षण अवश्य कर लेना चाहिए। भावुकतावश [illegible]ति[illegible]द हो जाना अलग बात है, और उसका पूर्ण [illegible] से पालन कर लेना दूसरी बात। अतः आप भावावेश में न आकर कुछ गहराई से चिन्तन करने के पश्चात् ही प्रतिज्ञा अथवा नियम ग्रहण करें। वैसे आपकी भावनाशीलता एवं संकल्पशीलता से मैं बहुत प्रसन्न हूं।"

गुणचन्द्र ने पुनः दृढ़ता भरे स्वरों में निवेदन किया—"गुरुदेव, मैंने इस विषय पर बहुत गम्भीर विचार किया

है और इसके पश्चात् ही श्री चरणों में उपस्थित हुआ हूं। मैं जितना भावनाशील हूं उतना दृढ़चित्त भी। फिर मैं प्रतिज्ञा ही इस रूप में ले रहा हूं कि जब तक मेरे अधिकार में सम्पत्ति रहेगी तब तक मैं २०० रुपये प्रतिदिन दान दूंगा। जिस दिन मेरे पास पैसे नहीं होंगे, मैं नहीं दूंगा। हां, मैं अपने भोजन-वसन की चिन्ता बाद में करूंगा। पहले अपनी प्रतिज्ञा का ख्याल करूंगा। अतः आपश्री मुझे यह प्रतिज्ञा सहर्ष करवा दें। साथ ही यह आशीर्वाद भी प्रदान करें कि मैं अपने संकल्प के पालन में पूर्ण सफलता प्राप्त करूं।"

आचार्यश्री ने युवक गुणचन्द्र की दृढ़ता देखकर उसे दो सौ रुपये मूल्य के किसी भी दान योग्य पदार्थ के दान की प्रतिज्ञा करवा दी।

गुणचन्द्र प्रसन्नवदन घर लौट गया। दूसरे दिन प्रातःकाल उसने अपनी धार्मिक आराधना की नित्य क्रिया से निवृत्त हो, माता-पिता को प्रणाम किया और मुनीमजी से तिजोरी की चाबी मांगी। तिजोरी से दो सौ रु० निकाल कर वही में घर खर्च खाते के रूप में लिख दिया। बाजार जा कर दो सौ रु० के कुछ खाद्य पदार्थ एवं कुछ वस्त्रादि खरीद लिये और एक दिशा में बढ़ कर मार्ग में कोई भी दीन-दुःखी भिक्षुक, लूला, लंगड़ा-अपंग व्यक्ति मिला, उसे उसकी आवश्यकतानुसार पदार्थ दिया और आगे बढ़ गया। इस प्रकार घंटे

भर में अनेक दुःखियों की दुआएं लेकर लौट आया। इसी क्रम से वह प्रतिदिन दान देने लगा। कभी औषधालयों की ओर चला जाता और गरीब मरीजों को औषधि एवं पथ्यादि पदार्थ दे देता, तो कभी विद्यालयों की ओर बढ़ जाता और गरीब विद्यार्थियों को अध्ययन सामग्री-पुस्तक-कापी कलम एवं विद्यालयोपयोगी पोशाक आदि के द्वारा मदद देता। इस प्रकार चन्द दिनों में ही गुणचन्द्र की ख्याति द्वितीया के चन्द्र की तरह निरन्तर बढ़ने लगी। चारों तरफ गुणचन्द्र की ही चर्चा सुनाई पड़ने लगी। वसन्तपुर ही नहीं, अनेक निकटवर्ती ग्रामों एवं कस्बों में गुणचन्द्र की गुण-कीर्ति फैल गई। दूर-दूर के अभाव-ग्रस्त लोग दान-प्राप्ति हेतु वहां पहुचते और मनोवान्छित प्राप्त होने पर गुणचन्द्र का यशोगान करते हुए लौट जाते।

स्थिति यहां तक बन गई कि याचक-भिक्षुक समय-असमय गुणचन्द्र की दुकान पर पहुंच जाते। इससे मुनीमों को परेशानी होने लगी। एक दिन मुख्य कर्मचारी (हेड मुनीमजी) ने विचार किया—आखिर इतने भिखारी यहां क्यों आने लग गये हैं? और गुणचन्द्र जी की प्रशंसा के इतने पुल क्यों बांधते हैं? इसी चिन्तन में खोए-खोए सहसा उनकी दृष्टि बही के उन पृष्ठों पर पड़ी जिन पर २००, रु० प्रतिदिन घर खर्च खाते में लिखे हुए थे और वे गुणचन्द्र की हस्तलिपि में ही लिखे

गए थे। देखकर मुनीमजी चौंक उठे। वे सोचने लगे- क्या गुणचन्द्रजी दो सौ रुपये प्रतिदिन इन भिखारियों को लुटा देते हैं ? इस प्रकार से तो ये कुछ वर्षों में ही सेठजी का दिवाला निकाल देंगे और बदनाम मैं हो जाऊंगा कि ऐसा मुनीम था जिसने सेठजी का दिवाला निकाल दिया.......। नहीं, मैं यह सब सहन नहीं करूंगा। मुझे सेठजी को सावधान कर देना होगा।

बालको, आप जानते ही हैं कि जिसके सोचने की जितनी क्षमता होती है, वह उतनी ही दूर की सोच सकता है। संकुचित विचारों वाला व्यक्ति दूर की कैसे सोच सकेगा ! मुनीमजी बेचारे क्या जाने कि दान देने से कभी दिवाला नहीं निकलता। दिवाला निकलता है धन का जुआ, मांस-शराब, आदि दुर्व्यसनों में उपयोग करने से। दान दिया हुआ द्रव्य तो दस गुणी शक्ति लेकर पुनः आ जाता है।

आखिर अपने छोटे दिमाग से सामान्य विचार कर मुनीमजी ने गुणचन्द्र को ही समझाना उपयुक्त समझकर उन्हें दूकान पर बुलवाया और पूछा—'कुछ दिनों से दो सौ रु० प्रतिदिन पर खर्च खाते में लिखे गए हैं। क्या ये आपने ही लिखे हैं ? इनका उपयोग आप किन कार्यों में करते हैं ?"

गुणचन्द्र ने सहज स्वर में कहा—"मुनीमजी मैंने

आचार्यश्री से दो सौ रुपये प्रतिदिन दान देने की प्रतिज्ञा ली है। अतः ये दो सौ रुपये मैं प्रतिदिन दीन-दुखियों की सेवा में लगाता हूं।"

मुनीमजी ने गुणचन्द्र की प्रतिज्ञा की बात सुनी, तो हतप्रभ रह गए। दो सौ रुपये प्रतिदिन दान की बात उनकी कल्पना के भी बाहर थी। वे सोच ही नहीं सकते थे कि ऐसा भी कोई कर सकता है। और बात ही कुछ ऐसी है। उस युग में दो सौ रुपये बहुत बड़ी कीमत रखते थे। आज जो रुपये का मूल्य है, उस अनुपात में उस समय के रुपये का मूल्य सौ गुना अधिक माना जा सकता है। अर्थात् उस समय का दो सौ रुपया आज के बीस हजार (२०,०००) के बराबर होगा। अब आप ही विचार करें आज के हिसाब से बीस हजार का प्रतिदिन दान कोई सामान्य बात है! बेचारे मुनीमजी घबरा उठे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

हां, तो मुनीमजी ने गुणचन्द्र की बात सुनकर उन्हें समझाते हुए कहा—"देखो, गुणचन्द्रजी, कभी-कभी दस-बीस रुपये का दान कर देना अलग बात है। किन्तु रोजाना दो सौ रुपये दान कर देना उचित नहीं है। पैसा कमाना कोई हंसी-खेल नहीं है जो उसे इस प्रकार से लुटाया जाय। आज तक जो दिया, सो दिया। अब कल से आप यह सब बन्द कर दें अन्यथा मैं सेठ साहब को शिकायत कर दूंगा।"

गुणचन्द्र ने शान्त, किन्तु दृढ़तापूर्ण शब्दों में कहा—"मुनीमजी, मैंने आपको अभी बताया है कि मैंने आचार्यश्री से यह संकल्प ले लिया है। अतः इस प्रतिज्ञा का पालन मैं प्राण-प्रण से करूंगा। रही धन कमाने की बात, सो इस विषय में आपको चिन्तित नहीं होना चाहिये। पिताजी के पास धन की कोई कमी नहीं है। आखिर यह करोड़ों की सम्पत्ति किस काम आने वाली है? खाने वाला तो मैं अकेला ही हूं! अतः शुभ कार्यों में इसका जितना उपयोग लिया जा सके, ले लेना चाहिये।"

"देखिये गुणचन्द्रजी, मैं आपको सही कह रहा हूं। आपका यह हठाग्रह ठीक नहीं है। दो सौ रुपये रोजाना दान की कोई प्रतिज्ञा नहीं होती है और न ऐसी प्रतिज्ञा निभायी ही जा सकती है। आप सीधी तरह से समझ जाएं, तो अच्छा है, नहीं तो मैं सेठ साहब से कहकर यह सब बन्द करवा दूंगा।" मुनीमजी ने कुछ आवेश-भरे शब्दों में कहा।

गुणचन्द्र ने मुनीमजी से अधिक बहस करना उचित नहीं समझा। "आप जैसा उचित समझें, करें। मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता हूं।" कहकर चल पड़ा।

गुणचन्द्र ने तो अपना दृढ़ निश्चय बता दिया, किन्तु

इधर मुनीमजी का पारा एक सौ आठ डिग्री तक पहुंच गया। वे तुरन्त उठे और चाबियों का गुच्छा लेकर सेठ धनचन्द्रजी के पास गए। क्रोध में भन्नाते हुए उन्होंने चाबियों का गुच्छा सेठजी के सामने फेंकते हुए कहा—"सेठ साहब, सम्भालिये अपनी दुकान। मुझे यहां नौकरी नहीं करनी है।"

सेठ धनचन्द्र एकदम चौंकते हुए मुनीमजी की ओर देखने लगे। मुनीमजी के चेहरे पर उभरी आवेश की रेखाएं उन्हें स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। शान्त भाव से उन्होंने कहा—"मुनीमजी, बात क्या है? आप आज इतने उग्र क्यों हो रहे हैं? क्या किसी ने कोई अपमान किया है?'

"सेठ साहब, मान-अपमान की बात नहीं है। मुझे ऐसी जगह नौकरी नहीं करनी है, जहां का मालिक ही अपना दिवाला निकालने की योजना बना कर अपनी सम्पत्ति लुटा रहा हो। आपके कंवर साहब (गुणचन्द्र) को अपनी सम्पत्ति का बड़ा अहंकार हो गया है। वे गले हाथों धन लुटा रहे हैं। समझाया, तो कहते हैं—'मैंने प्रतिज्ञा की है, इसलिये दो सौ रुपया रोज लुटाऊंगा।" मैं ऐसी जगह नौकरी करके अपनी प्रतिष्ठा नहीं खोना चाहता हूं। आखिर आपकी सम्पत्ति कोई कुबेर का भण्डार तो है नहीं जो कभी समाप्त ही न हो! इस प्रकार लुटाने से तो कुबेर का भण्डार भी खाली हो

जाएगा। और कल यदि आपका दिवाला निकल गया, तो बदनाम मैं ही होऊंगा। लोग कहेंगे कि सेठजी के मुनीम ने उनका दिवाला निकलवा दिया....।" सेठजी की बात पूरी सुनने से पूर्व ही मुनीमजी ने अपना आवेश उगल दिया।

सेठजी ने हल्के—से मुस्कराते हुए कहा—"अच्छा! तो आपका यह क्रोध गुणचन्द्र पर है! इसमें क्रोध की क्या बात है! अरे, यह तो निरा बालक ही है! अठारह वर्ष का हो गया है, तो क्या हुआ! है तो बच्चा ही। उसे समझाने में क्या लगता है! लगता है आप भी उसके साथ बच्चे बन गए हैं। बच्चे तो हठ किया ही करते हैं। उनका हठ कितने समय का? उनके साथ आप यदि ऐसे आवेश में आ जाएं, तो यह बचकानापन ही होगा....। अच्छा, आप जाएं। चाबियां यहां देने की आवश्यकता नहीं है। मैं अभी गुणचन्द्र को बुलवाकर समझा दूंगा।

मुनीमजी कुछ शर्मिन्दा होते हुए से चले गए। सेठजी ने एक नौकर को भेजकर गुणचन्द्र को बुलवाया। गुणचन्द्र पिताजी की आज्ञा पाकर शीघ्र चला आया। पिताजी को अभिवादन—प्रणाम कर खड़ा हो गया। सेठजी ने उसे अति स्नेह से अपने पास बिठाया और सिर पर प्यार भरा हाथ फिराते हुए मधुर शब्दों में कहा—"क्यों बेटा आज कल क्या कर रहे हो?

चारों तरफ से तुम्हारी बड़ी प्रशंसा सुन रहा हूं। आखिर इस प्रशंसा का कारण क्या है ?'

विनम्र शब्दों में गुणचन्द्र ने कहा—"पिताश्री, विगत कुछ दिनों से आचार्य श्री विमलकीर्ति के प्रवचन सुनता रहा हूं। एक दिन आचार्य श्री ने अपने प्रवचन में दान–धर्म की गम्भीर व्याख्या की और उससे होने वाले अदृश्य लाभ बताए। मेरे मन में भी दान की भावना जागृत हुई और मैंने उनसे दो सौ रुपये प्रतिदिन दान देने की प्रतिज्ञा ले ली। तब से मैं प्रतिदिन दो सौ रुपये दान में लगाता हूं। चारों तरफ फैल रही प्रशंसा का मुख्य कारण यही हो सकता है।"

"अच्छा ! यह बात है क्या ! बेटा, दान देना बहुत अच्छी बात है। हर व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य के अनुसार देना ही चाहिये किन्तु इसकी कुछ सीमा भी होती है। प्रसंग आने पर और उचित पात्र के समक्ष होने पर पांच हजार का दान भी दिया जा सकता है और समुचित पात्र के अभाव में एक पैसा भी नहीं देना उचित है। अतः यह नियम तो उचित नहीं लगता कि दो सौ रुपये प्रतिदिन दिया जाय। इस प्रकार से तो पात्रापात्र का विचार ही नहीं रहेगा। हमें तो बस दो सौ रुपये देने हैं, चाहे कोई भी व्यक्ति सामने हो।" सेठजी ने समझाने के स्वर में कहा।

"नहीं पिताजी, ऐसी बात तो नहीं है। उचित पात्र का चयन करना तो अपने हाथ में है। हम यदि पात्रता को परख कर ही देंगे, तो हमारा दान अयोग्य पात्र के हाथों में कैसे जाएगा?'

"तो फिर बेटा, हमें प्रतिदिन पात्रों की खोज करनी पड़ेगी। उन्हें ढूंढ़-ढूंढ़कर उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होगी। बेटा, ऐसा नियमबद्ध कोई दान नहीं होता है। जो दान-पात्र हमारे सामने आ जाए, उसे कुछ दे दो, यही बहुत है। प्रतिदिन दो सौ रुपये का आग्रह रखना उचित नहीं है और ऐसा जीवन पर्यन्त करना सम्भव भी नहीं है। इस प्रकार तो कुबेर का खजाना भी खाली हो जाएगा। अपने पास तो सम्पत्ति है ही कितनी? अतः आज तक दिया, सो दिया। अब से यह दो सौ रुपये का आग्रह छोड़कर जब कोई पात्र आजाए, थोड़ा—बहुत सहयोग कर देना, समझे!" सेठजी ने निर्देशात्मक समझायिश दी।

पिताजी की बात गुणचन्द्र के गले नहीं उतरी। उसने कहा, पिताजी, आपकी बात मेरी समझ में नहीं आई। मैंने अभी आपसे निवेदन किया कि मैंने आचार्यश्री से नियम ले लिया है और नियम भी उन्होंने बहुत समझाकर तथा मेरी सारी परिस्थिति को सुनकर दिया है। अब मैं इस नियम को भंग कैसे कर सकता

हूं ? मैंने आचार्य प्रवर को विश्वास दिलाया था कि जब तक मेरे पास धन होगा, अथवा मैं सम्पत्ति का अधिकारी रहूंगा, खाने की परवाह नहीं करके प्र दान दूंगा और इस प्रकार प्रतिज्ञा को प्राण-प्रण से निभाऊंगा। अतः अब इस आग्रह को छोड़ने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। फिर अपने पास धन की कमी ही क्या है! करोड़ों का धन है। हजारों की आय है और खाने वाला तो मैं एक ही हूं। जब तक है, दान देकर इसका लाभ क्यों न उठालें ? मैं तो आप से भी यही निवेदन करूंगा कि आप भी अपने धन का शुभ हस्त से परमार्थ के कार्यों में उपयोग करें, इसी में लाभ है।"

सेठ धननन्द को भी कुछ-कुछ आवेश का ज्वर चढ़ने लगा। उन्होंने कहा—"बेटा! तुम तो बहुत होशियार हो गए हो। मुझे ही सीख देने लगे हो। किन्तु याद रखो, छोटे मुंह बड़ी बात नहीं करनी चाहिए। तुम अभी से अपने आपको समझने क्या लगे हो ? तुम अभी बच्चे हो। पैरों पर खड़े हो जाओ, हाथों से कमाने लगो, तब दो को छोड़कर चार को दान करना, कोई मना नहीं करेगा। अभी तुम्हें कमाना तो कुछ आता नहीं, और उड़ाने चले हो। मेरे रहते यह सब नहीं हो सकता।"

"पिताजी, आप यह कैसे कह रहे हैं कि मैं पैसे उड़ा

रहा हूं। मैं किसी दुर्व्यसन में पैसे समाप्त करता, तो आपका यह आक्षेप उचित माना जा सकता था। किन्तु मैं कभी किसी दुर्व्यसन का सेवन नहीं करता। अतः आपका यह आक्षेप सर्वथा अनुचित एवं निराधार है। मैं जो कुछ पैसे खर्च कर रहा हूं, वह परमार्थ के कार्य में लग रहा है, और आचार्यश्री ने प्रवचन में फरमाया था कि परमार्थ में खर्च किया हुआ द्रव्य दस गुणी शक्ति के साथ पुनः प्राप्त होता है। अतः कृपा करके आप यह विचार निकाल दें कि दान में दिया गया पैसा निरर्थक जा रहा है। वह तो उल्टे अपने आगामी जीवन का खजाना भरा जा रहा है।

"फिर आप और भी विचार करें। अपने पास इतनी सम्पत्ति है। आखिर उसका उपयोग क्या है? यदि इसका हम सही दिशा में उपयोग नहीं करते हैं, तो क्या हम उसके चौकीदार ही नहीं है? पिताजी! एक बात स्पष्ट निवेदन कर दूं। जब तक मैं इस घर में रहूंगा और मेरा यहां कुछ भी अधिकार रहेगा, मैं दो सौ का दान दिये बिना संसार का कोई काम नहीं करने वाला हूं।"

सेठ धनचन्द्र अपने विनीत एवं सुशील पुत्र की इस प्रकार के नियम के प्रति दृढ़ता देखकर दंग थे, दूसरी ओर हठवादिता, पर क्रुद्ध भी। उन्हें समझ में नहीं आ

रहा था कि युक्ति-संगत दृढ़ता पर गर्व किया जाए, हठवादिता पर आक्रोश ! एक तरफ उनका पितृ-मन, दूसरी ओर श्रेष्ठि-मन । पितृ-मन कहता कि पुत्र ठीक कह रहा है । सम्पत्ति यहीं रह जाने वाली है । जितना लाभ लिया जा सके, ले लेना चाहिये । सुपुत्र का एक-एक तर्क पितृ-मन को प्रभावित कर रहा है । दूसरी ओर श्रेष्ठि–मन आकर खड़ा हो जाता है । उसका तर्क है, पुत्र अभी समझता ही क्या है ? इसे क्या पता कि पैसा कैसे कमाया जाता है ? चोटी का पसीना एड़ी तक बहता है, तब कहीं पैसा कमाया जाता है । और इस श्रम से उपार्जित पैसा क्या इस तरह लुटाने के लिये है ?

फिर पितृ–मन बोल उठता है—नहीं, यह ठीक कह रहा है । वह किसी दुर्व्यसन में तो पैसा नहीं उड़ा रहा है ! वह तो दीन-दुःखियों की सेवा में लगा रहा है । इसे उड़ाना कैसे कहा जा सकता है ? नहीं, यह पैसा उड़ा नहीं रहा है, उसका सही उपयोग कर रहा है । ऐसे पुत्र को धन्यवाद देकर सोने में लगा लेना चाहिये । यह मेरी आँखें खोल दे रहा है ।

किन्तु श्रेष्ठि-मन अपनी पराजय मानने को क्या तैयार है ? वह कहता है, इस छोटे से बच्चे की बात की बात मैं कैसे मान लूं ? यह कौन होता है मुझे सि

ने वाला ? और फिर आज इसकी बात में आ गया
ो कल यह मनमाने तरीके से पैसा बरबाद करने लगेगा
ौर थोड़े दिनों में ही मेरी सारी सम्पत्ति समाप्त हो
ाएगी। यह ठाठ और यह प्रतिष्ठा समाप्त होते देर
हीं लगेगी। नहीं नहीं। मैं ऐसा कभी नहीं होने
ंगा। इस नादान का अधिकार ही क्या है मेरी कमाई
ो समाप्त करे! बड़ा दानवीर बन रहा है। दानवीर
नना है तो पहले परिश्रम करे। पैसा कमाए फिर दान
। बच्चू को थोड़े ही दिनों में नानी याद आ जाएगी।
ैसा कमाना कोई सहज बात नहीं है। लाखों लोग
ारे दर-दर ठोकर खाते फिरते हैं, जी जान से श्रम
रते हैं फिर भी पूरी गृहस्थी भी नहीं चला पाते। पैसे
माएगा, तब पता चलेगा लल्लू को!

इस विचार-मन्थन में आखिर श्रेष्ठि-मन ने परास्त
र दिया पितृ-मन को। सेठजी का क्रोध तीव्रतम हो
ा वे आग बबूला हो बोल उठे—"अरे नादान तू
िसके सामने बोल रहा है, तुझे पता भी है—तू अपने
ापको बड़ा धर्मात्मा समझ रहा है! बड़ा दानवीर
ने जा रहा है! दानवीर बनना है तो पहले हाथों से
ाना सीख, फिर देना दान। खबरदार, मेरी सम्पत्ति
ें से एक पैसा भी उठाया तो। बाबू साहब को इतना
ार से समझा रहा हूं, और आप सिर पर चढ़े जा रहे
ैं! मुझे उपदेश झाड़ने लगे हैं! मुझे तुम्हारे उपदेश

की जरूरत नहीं है……। जाओ अपना काम करो……और हां, ध्यान रखना आज से तुम्हारा यह यारों के लिये घूमना-फिरना सब बन्द है। सुबह से शाम तक मेरे साथ रहोगे और दुकान के कार्य में सहयोग दोगे।" कहते हुए सेठजी उठ खड़े हुए।

गुणचन्द्र दिग्मूढ़ सा बैठा ही रहा। उसने पिताजी का यह रौद्र-भयावना रूप आज पहली बार ही देखा था। इसके पूर्व पिताजी ने कभी उसे चूं तक नहीं कहा था। उसकी हर इच्छा कहने से पूर्व ही पूरी हुई थी। कभी किसी भी वस्तु के लिये जिद नहीं करनी पड़ी थी। किन्तु आज !!! आज का पिताजी का यह रूप उसे अप्रत्याशित ही लगा। फिर भी वह पिताजी के क्रोधपूर्ण विचारों को शान्ति से सुनता रहा। न उसने उनका कोई प्रतिवाद किया, न मन में आक्रोश ही। वह समझ रहा था कि पिताजी अभी एक पिता के हित में नहीं सोच रहे हैं। अभी उन्हें पैसा ही सब कुछ दिखाई दे रहा है। वह सौम्य एवं शान्त मुद्रा में ही पिताजी को जाते देखता रहा। न उसने उन्हें रोका और न कोई निवेदन ही किया।

चार कदम चलकर सेठ धनचन्द्र स्वतः पुनः लौट आए—"क्यों ! बैठे क्यों हो ? जाओ, शौचादि निवृत्त हो लो, फिर मेरे साथ दुकान पर चलना है।

कुछ शान्त स्वर में सेठजी ने गुणचन्द्र को उठने का संकेत दिया।

गुणचन्द्र ने शान्त एवं विनम्र शब्दों में कहा—"पिताजी, मैं भोजन तो तभी कर सकता हूं जबकि मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो। दो सौ रुपये दान दिये बिना मैं भोजन नहीं कर सकता। हां, कार्य का जहां तक सम्बन्ध है, मैं आपके साथ दुकान पर चलने को तैयार हूं। यथा शक्ति कार्य में हाथ बटाने का प्रयास करूंगा।"

सेठजी ने कुछ स्नेह दिखाते हुए पुत्र गुणचन्द्र का हाथ पकड़ा और उसे उठाते हुए कहा—"देखो बेटा, ऐसी जिद् नहीं करते हैं। ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं होती है, और न ऐसी प्रतिज्ञा जीवन भर निभ ही सकती है। अभी अपने पास कुछ धन है, और मान लो कल कुछ नहीं रहे तो फिर प्रतिज्ञा का पालन कैसे होगा? अतः यह आग्रह छोड़ो और भोजन करो।"

पिताजी! मैंने प्रतिज्ञा इसी रूप में ली है कि जब तक मेरे पास पैसा रहेगा, मैं भोजन की परवाह किये बिना पहले दान करूंगा। हां, आप यह बताएं कि मेरा इस घर में कोई अधिकार है या नहीं? आपकी सम्पत्ति पर मेरा भी कोई हक है या नहीं?

"बेटा, अधिकार और हक की क्या बात है? सब

कुछ तुम्हारा ही है । तुम्हीं इसके मालिक हो । किन्तु कुछ समझने की कोशिश करो । इस तरह पैसा लुटाना तो अपने अधिकार का दुरुपयोग करना ही होगा । फिर मेरे रहते हुए तो मेरी आज्ञा ही तुम्हारे लिए सब कुछ है और मैं कह रहा हूं तुम यह दान-वान नहीं कर सकते ।"

"पिताजी, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । किन्तु मेरा कुछ व्यक्तिगत जीवन भी तो है । व्यक्तिगत जीवन में ली गई प्रतिज्ञा का भी कुछ महत्त्व होता है । मैं आचार्य भगवन् के समक्ष निवेदन कर चुका हूं कि जब तक इस घर पर मेरा अधिकार रहेगा, मैं प्राण-प्रण से अपनी प्रतिज्ञा का पालन करूंगा । अतः यदि मेरा इस घर पर अधिकार है, तो मैं दो सौ रुपये दान दिये बिना भोजन नहीं कर सकता ।"

सेठ धनचन्द्र को पुनः क्रोध ने आ घेरा । नेत्र लाल-लाल हो गए । होंठ फड़कने लगे । वे एकदम आवेश के स्वरों में बोल उठे—"चल उठ, निकल जा इस घर से । बड़ा अधिकारी बन रहा है ! मेरे रहते तेरा कोई अधिकार नहीं है । नासमझ को इतने प्रेम से समझा रहा हूं, और लाट साहब तो अधिकार-अनधिकार की बातें करने लगे हैं । हाथों से कमाना, फिर अपना अधिकार जमाना ।……चलो, निकलो इसी समय घर से……

कोई अधिकार नहीं है तुम्हारा इस घर पर ।" कहते हुए सेठजी ने गुणचन्द्र को धक्का देकर कमरे से बाहर कर दिया ।

गुणचन्द्र ने इसका न कोई प्रतिवाद किया और न प्रतिकार । वह इतना ही बोल कर बाहर निकल आया- "पिताजी ! आप धन को बहुत अधिक महत्त्व दे रहे हैं। आप एक बार और गम्भीरतापूर्वक विचार करलें ।"

"चल हट, यहां से । मुझे ही उपदेश झाड़ रहा है। कर लिया मैंने खूब विचार.......मैं तेरे जैसे नालायक का मुंह नहीं देखना चाहता.......। निकल जा इसी क्षण मेरे घर से.......।" कहते हुए सेठ धनचन्द्र तेज कदमों के साथ बड़-बड़ाते हुए बाहर चले गए ।

—२—

गुणचन्द्र गम्भीर मुद्रा लिये वहां से सीधा अपनी माताजी के कमरे में गया । चरण स्पर्श कर प्रणाम किया और आशीर्वाद मांगने की मुद्रा में निवेदन किया– "माताजी, मैं विदेश जा रहा हूं । आप आशीर्वाद दें, मैं अपने कार्य में सफलता प्राप्त करूं ।'

अपने इकलौते लाड़ले के चेहरे की गम्भीरता देखकर एवं एकदम अप्रत्याशित विचार सुनकर मां अवाक् रह

गई। वह अपने लाल को अपलक देखती ही रही। उसके मुंह से कोई शब्द नहीं निकले।

माताजी को चुप देखकर गुणचन्द्र कुछ अधीर हो उठा—"मां, मैं विदेश जा रहा हूं। क्या तुम मुझे आशीर्वाद नहीं दोगी?.........इस घर पर मेरा अधिकार नहीं है, तो क्या तुम्हारे प्रेम पर भी मेरा अधिकार नहीं है? क्या मैं इतना अभागा-निराश्रय हूं कि तुम्हारा आशीर्वाद भी नहीं पा सकता? मां, बोलो. बोलो मां.........।" गुणचन्द्र का गला रुंध गया, उसकी आंखें भर आईं।

मां अपने बेटे की भावुकता भरी बातें सुनकर भाव-विह्वल हो उठी। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है, उसकी आंखों का तारा इतना अधीर क्यों हो रहा है। उसने आज तक अपने लाल को कभी किसी वस्तु के लिये इतना अधीर होते नहीं देखा था.........। उसने तुरन्त लाल को खींच कर सीने से भींच लिया। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोली—"बेटा, तुझे आज हो क्या गया है? तू ऐसी बहकी-बहकी बातें क्यों कर रहा है? तुझे विदेश जाने की नौबत क्यों आ गई बेटा? तुम्हारी सौ पीढ़ी खाए, तो तुम्हारा धन नहीं खूटे.........। बेटा, तुझे किसी ने कुछ कह दिया है क्या?.........बोल बेटा! किसने कहा तुझे विदेश जाने के लिए? तू मेरा इकलौता लाल और विदेश चला

जाए ! मैं यहां जिन्दा कैसे रहूंगी ! ऐसा मत बोलो बेटा । चलो हाथ-मुंह धोकर भोजन करलो ।" मां एकदम अधीर हो उठी ।

गुणचन्द्र मां की ममतामयी अंक से अपने आपको छुड़ाते हुए बोला—"नहीं, मां, मैं अभी इस घर का भोजन नहीं कर सकूंगा ।........तुम मुझे आशीर्वाद दो कि मैं बहुत जल्दी तुम्हारे हाथों का भोजन खाने की योग्यता प्राप्त कर सकूं । मां, आशीर्वाद दो मैं चलूं...." गुणचन्द्र चलने को उद्यत हुआ ।

मां ने शीघ्र ही हाथ पकड़कर उसे खींच लिया । वह करुणा-कातर होकर बोल उठी—' लाल, क्या सचमुच ही तू मुझे छोड़कर जा रहा है ? अब तू मेरे हाथ का भोजन नहीं खाएगा ? बेटा, बोल, ऐसी क्या बात हुई ? मुझे बता तो सही ।" वह फफक-फफक कर रो पड़ी ।

"मां, तुम अधीर मत बनो । तुम्हारे आशीर्वाद से मैं बहुत जल्दी पुनः तुम्हारी सेवा में उपस्थित हो जाऊंगा । अभी तुम मुझे जाने दो ।"

"पर बेटा, तू जा क्यों रहा है ? मुझे कारण तो बता । अचानक ऐसी कौन-सी कमी इस घर में आ गई कि तुझे इस छोटी सी उम्र में विदेश जाना पड़ रहा है ?" कुछ स्वस्थ होते हुए मां बोली ।

"मां, वास्तव में बात यह है कि मैंने आचार्य श्री
नियम (प्रतिज्ञा) लिया है कि मेरे पास होते हुए मैं दो
रुपये प्रतिदिन दान करूंगा । तुम्हें भी मालूम हो
अभी कुछ दिन पूर्व आचार्य श्री यहां पधारे थे । उन
उपदेश कितना प्रभावशाली होता था । मुझ पर उस
असर हो गया और मैंने सोचा अपने घर में धन की
कमी नहीं है, जितना लाभ लिया जा सके, ले ले
चाहिये । मैंने यह नियम ले लिया । कुछ दिनों से मैं
सौ रुपये रोज दान करता रहा । किन्तु आज मुनीम
ने पिताजी को शिकायत कर दी और पिताजी कहते
कि पहले हाथों से कमाओ, फिर दातार बनो । तुम्हा
इस घर में कोई अधिकार नहीं है, निकल जाओ इस
से । पिताजी का कहना भी किसी सीमा तक ठीक है
जब तक मैं अपने परिश्रम से कमाने न लगूं, तब त
मुझे क्या अधिकार, कि पिताजी की सम्पत्ति का द
करूं ? अतः मैं तुमसे आशीर्वाद लेने आया हूं तुम मु
हार्दिक आशीर्वाद दो कि मैं अपनी प्रतिज्ञा का पूर्ण र
से पालन कर सकूं ।

मां अपने सुपुत्र की सारी बातें अपलक सुनती रही
जब गुणचन्द्र अपना स्पष्टीकरण दे चुका तो गम्भी
मुद्रा में मां ने कहा—"अच्छा, अब समझ में आई पू
बात । बेटा, प्रतिज्ञा लेना और दान देना बहुत अच्छ
है । मैं इसको अच्छा समझती हूं । जब पूर्व पुण्योदय

पैसा मिला है, तो इसका लाभ लेना ही चाहिये । किन्तु तुम्हारे पिताजी वैसा नहीं करने देना चाहते, इसका भी कोई कारण तो होगा ही । वे क्या कहते हैं इस विषय में ? क्या उन्होंने बिलकुल इन्कार कर दिया कि तुम दान दे ही नहीं सकते हो !"

"नहीं, ऐसा तो नहीं कहते । वे कहते हैं कि यदाकदा १०–२० रुपये दे दिया करो । यह दो सौ रुपये का नियम नहीं चल सकता है ।'

"तो बेटा, उनका कहना भी कुछ ठीक ही है । रोजाना इतना दान वे कैसे सहन कर सकेंगे ! उन्होंने बहुत परिश्रम से पैसा कमाया है ।"

"किन्तु मां, अब अपने पास पैसे की कोई कमी नहीं है । अभी तुम्हीं ने कहा था कि सौ पीढ़ी खाए, तो भी समाप्त नहीं हो सकता । फिर मैंने प्रतिज्ञा जो ले ली है ! उसे तो पूरा करना ही पड़ेगा !

"बेटा, प्रतिज्ञा तोड़ने की बात भी मैं नहीं कहती । जो (प्रतिज्ञा) ली है, उसे पूरा निभाना ही चाहिये । किन्तु प्रतिज्ञा लेने के पहले थोड़ा विचार कर लेना चाहिये था । हमें भी कुछ पूछ लेना था । खैर, वह तुम ने नहीं किया । अब मेरी समझ में एक ही मार्ग दिखाई देता है कि तुम यहीं पर कुछ व्यापार-धन्धा चालू

करो। और उससे जमा कर जो आये हो, उसे दान करो। तुम्हें यहां से कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है।" मां ने अपना सुझाव रखा।

"मां, तुम्हारा कहना ठीक है। किन्तु प्रथम तो यहां रह कर पिताजी से अलग व्यवसाय करना मुझे उचित नहीं लगता है। दूसरी ओर पिताजी का कहना है कि मेरा इस घर पर कोई अधिकार ही नहीं है। उन्होंने निकल जाने का आदेश दिया है। जब इस घर पर कोई अधिकार ही नहीं है, तो व्यापार के लिये एक पैसा भी पूंजी मैं यहां से नहीं ले सकता हूं। ऐसी स्थिति में एक ही रास्ता बच जाता है कि मैं कहीं बाहर जाकर नौकरी करूं और जितने पैसे मिलें, दान करूं इसमें मेरी प्रतिज्ञा भी भंग नहीं होगी। क्योंकि उसमें मेरे पास जितना होगा, दान करता रहूंगा। यहां रहने पर तो मैं अपने विचारों से इस घर पर अपना अधिकार मानता हूं, और अपने अधिकार में इतना धन होते हुए प्रतिज्ञा के अनुरूप दान न करूं, यह अनुचित है। अतः तुम तो मुझे आशीर्वाद दो, ताकि मैं अपने भाग्य और पुरुषार्थ की परख कर सकूं।" गुणचन्द्र ने विनम्र शब्दों में निवेदन किया।

बेटे की प्रतिज्ञा-पालन वाले तर्क पर मां मौन हो गई। उसने कहा—"बेटा, तो मैं तुम्हारे पिताजी को समझाने

का प्रयास करूं कि वे तुम्हें दो सौ रुपया प्रतिदिन दान करने दें ? बेटा, इस तरह तुम्हारा जाना तो मैं सहन नहीं कर पाऊंगी ।" कहती हुई मां पुनः भावुक हो उठी ।

"मां, अब यह सम्भव नहीं है । पिताजी ने मुझे घर से निकल जाने का आदेश दे दिया है । मैं अब यहां किसी भी कीमत पर नहीं रहना चाहता । पिताजी भी अब आपकी कोई बात मानने वाले नहीं हैं ।……अब तो मुझे जाने दो, अपना पुरुषार्थ आजमाने दो……।" कहते हुए गुणचन्द्र ने मां के चरण-स्पर्श किये और चलने लगा । मां ने कहा—"बेटा, जाओ मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेगा……। किन्तु बेटा, जाते-जाते मेरे हाथ का भोजन तो कर जाओ । भूखे पेट कैसे जा रहे हो……!"

"आज मैं भोजन यहां नहीं कर सकूंगा । जब तक दो सौ रुपये दान न कर दूं, तब तक मैं भोजन नहीं कर सकता । अब भोजन और कहीं करूंगा । विलम्ब हो रहा है । मैं चलता हूं ।" कहते हुए गुणचन्द्र भवन के द्वार की ओर बढ़ गया ।

मां ने उसे फिर पुकारा । गुणचन्द्र रुका, तब तक मां कमरे से स्वर्ण मुद्राओं की थैली ले आई और गुणचन्द्र के हाथों थमाने लगी । गुणचन्द्र ने उसे लेने से

साफ इन्कार कर दिया। उसने कहा—'जब इस घर में मेरा कोई अधिकार ही नहीं है, तो मैं यह सब कैसे ले सकता हूं ?"

मां ने कहा—"तुम्हारा कहना यथार्थ है। तुम्हारा इस घर में कोई अधिकार नहीं है, किन्तु मेरा तो कुछ अधिकार है इस घर में! क्या तुम मेरे अधिकार के उपयोग से भी मुझे वञ्चित कर देना चाहते हो ?" कहते हुए उसने एक बार और बेटे को गले लगा कर चूम लिया और फफककर रो पड़ी।

गुणचन्द्र ने अधिक विवाद करना अनुचित समझकर थैली ले ली। मां के चरण-स्पर्श करके नेत्र में छलक आए आंसुओं को पोंछता हुआ वह भारी कदमों से बाहर निकल गया।

शहर से बाहर निकल जाने के पश्चात् उसने अपने भावी जीवन की रूप-रेखा के विषय में विचार किया। वैसे अब उसके हाथ में अपनी प्रतिज्ञा के निर्वाह हेतु मार्ग में प्रतिदिन दान देने के लिये पर्याप्त राशि थी। अतः अब उसे अपने भोजन, आदि की व्यवस्था की भी कोई चिन्ता नहीं थी।

कुछ विचार-मन्थन के पश्चात् उसने श्रीमन्तों की नगरी प्रतिष्ठानपुर का मार्ग पकड़ लिया। संयोग से ही

उसे उधर जाने वाले एक काफिले का साथ मिल गया। उस काफिले के साथ गुणचन्द्र पड़ाव-दर-पड़ाव आगे बढ़ता गया। प्रतिदिन रात्रि-विश्राम के पश्चात् प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में उठकर लगभग एक-डेढ़ घण्टा सामायिक, आदि धार्मिक उपासना करना एवं अनन्तर शरीर शुद्धि से निवृत्त हो दो सौ रुपये दान के लिये काफिले से कुछ आगे-पीछे निकल जाना और पुनः पद-चिह्नों के आधार पर जा मिलना, उसका नित्य क्रम हो गया था।

—३—

यों लगभग ४५० मील की यात्रा तय करके संकल्प का धनी दृढ़ निश्चयी युवक गुणचन्द्र प्रतिष्ठानपुर पहुंच गया। आज तक उसकी माता के द्वारा दी गई वे स्वर्ण-मुद्राएं भी समाप्तप्राय हो रही थीं। जो कुछ बचीं, उन्हें शहर में प्रवेश करते समय दीन दुःखियों में वितरित करदीं। अब उसके सामने एक ही समस्या थी—अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना और आजीविका चलाना। समस्या बहुत जटिल थी। पास में कुछ भी साधन नहीं और विदेश का प्रसंग, जहां स्वयं का कोई परिचित नहीं। ऐसी स्थिति में जीवन-निर्वाह की व्यवस्था करना कोई सामान्य बात नहीं है।

समस्या के विकट जाल में उलझा गुणचन्द्र काफिले से अलग होकर प्रतिष्ठानपुर के मुख्य बाजार की ओर

निकल गया। चलते-चलते उसने निश्चय कर लिया कि आज उसे अपने भाग्य की परीक्षा कर लेनी है, अतएव उसे किसी के समक्ष दीनता नहीं दिखानी है। स्वाभिमान को किसी प्रकार की चोट न लगे इस प्रकार से उसे अपने कार्यक्षेत्र की खोज करनी है। साथ ही भाग्य परीक्षण के लिये अनहोनी एवं अटपटी-अजीबोगरीब शर्त भी रखनी है।

इस दृढ़निश्चय के साथ गुणचन्द्र एक कपड़े की बहुत बड़ी दुकान पर जा खड़ा हुआ। दुकान पर अनेक मुनीम-गुमाश्ते, नौकर-चाकर अपने-अपने कार्य में व्यस्त थे, कोई बहीखाते में खोये हुए थे, कोई ग्राहकों को माल दिखा रहे थे। कोई माल पैकिंग करवा रहे थे तो कोई हिसाब करके पैसा ले रहा था। गुणचन्द्र अपनी छोटी-सी खाली थैली हाथ में लिये दुकान के दरवाजे पर ही खड़ा होकर निरीक्षण भरी दृष्टि डालने लगा वहां के कार्यकर्त्ताओं पर।

एक कर्मचारी मुनीम की दृष्टि उस पर पड़ी। उसने पूछा—"कहिये, क्या चाहिये?"

गुणचन्द्र ने स्वाभिमान के साथ गम्भीर स्वर में कहा—"नहीं, कुछ नहीं चाहिये। मुझे दुकान के स्वामी से मिलना है।"

कर्मचारी ने हैड मुनीमजी की ओर इशारा करते

हुए कहा—"इस समय यहां कर्ता-धर्ता ये ही हैं। आप इनसे बात करिये।" साथ ही उसने हैड मुनीमजी को भी संकेत कर दिया।

हैड मुनीम ने कार्य से आंख हटाकर ऊपर देखा, सामने एक सौम्याकृत तेजस्वी युवक खड़ा है। मुनीमजी ने पैनी दृष्टि से गुणचन्द्र को देखा। सोचने लगे कि युवक तो खानदानी एवं स्वाभिमानी दीखता है। लगता है। किसी परिस्थितिवश यहां पहुंच गया है। उन्होंने बड़े शालीन शब्दों में कहा—"आइये, कैसे आना हुआ? विराजिये।'

गुणचन्द्र हैड मुनीमजी के निकट जाकर अदब के साथ बैठ गया—"मैं आपके यहा नौकरी की तलाश में आया हूं। कहिये, मिल सकेगी?"

"अवश्य, आप जैसे युवक के लिये नौकरी की क्या कमी है। किन्तु लगता है आप किसी उच्च एवं श्रीमन्त खानदान के हैं। फिर आपको यह नौबत क्यों आई।" मुनीमजी ने जिज्ञासु स्वरों में कहा।

"आपका विचार किसी सीमा तक ठीक है। मैं किसी सम्पन्न घर से ही सम्बन्धित हूं। किन्तु आप जानते हैं, कर्म इन्सान को कहां से कहां ले जाकर खड़ा कर देते हैं। बस, समझ लीजिये कि किसी कर्मोदय जनित परि-

स्थिति ने मुझे यहां लाकर खड़ा कर दिया है अ
अपने भाग्य को पुरुषार्थ की कसौटी पर कसने के लि
यहां तक पहुंच गया हूं । बस यही मेरा परिचय है
कहिये कोई कार्य मिलेगा ?" गुणचन्द्र ने शालीन श
में अपना परिचय दिया ।

"मैंने कहा ना, आप जैसे युवकों के लिये काम
कमी नहीं है । हां, आप किस कार्य में अधिक रुचि र
हैं ?" मुनीमजी ने दूसरा प्रश्न रख दिया ।

"आप जो भी कार्य देंगे, करने का प्रयास करूंग
वैसे मेरी रुचि अर्थव्यवस्था अथवा बहीखाते में वि
है ।"

'अच्छा आप रहिये, आपको रुचि के अनुसार क
दे दिया जायेगा ।"

"किन्तु नौकरी पर रहने के पूर्व मेरी कुछ शर्तें
इन्हें आप स्वीकार करें, तभी मैं यहां रह सकता हूं
गुणचन्द्र ने स्पष्ट किया ।

"श्रीमान्जी, यह तो कुछ समझ में नहीं आय
नौकरी पर आपको रहना है । हमें नौकर की कोई
आवश्यकता नहीं है । अतः कोई भी शर्त आपकी न
हमारी हो सकती है । किन्तु इसके विपरीत आप ही
रख रहे हैं । फिर भी बोलिये आप क्या कहना चा

है ?" मुनीमजी ने कुछ गम्भीर स्वर में कहा ।

"पहले मुझे यह पता चलना चाहिए कि सेठजी के पास कितने लाख अथवा करोड़ की सम्पत्ति है, इनका व्यापार कितना फैला हुआ है, कितनी जगह इनकी दुकानें हैं, कितने मुनीम-गुमाश्ते नौकर-चाकर हैं, मुझे अपना वेतन इच्छा अनुकूल मिल सकता है या नहीं ? इन सब बातों की पूरी जानकारी मिलने पर ही मैं कहीं नौकरी कर सकता हूं ।" गुणचन्द्र ने गौरवपूर्ण शब्दों में कहा ।

"श्रीमानजी ! आप कहीं आगे पधारिये । इन बेतुके प्रश्नों के उत्तर यहां नहीं मिलेंगे । आपको इन सबसे मतलब ही क्या है ? आपको अपनी नौकरी और वेतन से ही मतलब रखना चाहिये । आप यदि ऐसे बेतुके प्रश्न करेंगे, तो आपको कहीं पर भी नौकरी नहीं मिल सकेगी । कोई पागल व्यक्ति ही आपको अपनी आन्तरिक स्थिति का परिचय दे सकता है । आप चाहें तो आपका वेतनमान निश्चित करके आपको यहां रखा जा सकता है ।" मुनीमजी ने स्पष्ट उत्तर दिया ।

"जी नहीं, मैं नौकरी नहीं करूंगा, जब तक मेरे इन सभी प्रश्नों का पूर्ण समाधान नहीं हो जाता ।" कहते हुए गुणचन्द्र वहां से उठकर चल पड़ा ।

क्रमशः दूसरी, तीसरी और चौथी दुकान पर करीब करीब यही स्थिति बनी। गुणचन्द्र की सौम्याकृति एवं शालीनता को देखकर दुकान मालिक अथवा मुनीम आदि कर्मचारी प्रभावित होते और उसे अपने व्यापारिक संस्थान में रखने में प्रसन्न भी रहते। किन्तु उसकी शर्तों को सुनकर सभी मूक रह जाते। सभी सोचने लगते दीखने में तो बड़ा सुन्दर और सभ्य लगता है, किन्तु शर्तों से लगता है कोई चोर-उचक्का हो।

सभी संस्थानों से उसे कुछ समझायिश के साथ आगे बढ़ने का उत्तर मिलता गया और वह भी अपने भाग्य को पुरुषार्थ की कसौटी पर कसने हेतु आगे बढ़ता गया। इतने भटकाव के उपरान्त भी उसके मन में न कोई खिन्नता आई और न निराशा ही। वह उसी मस्ती के साथ दृढ़ संकल्प और उत्साह का सम्बल लिये बढ़ता गया। यों चलते हुए प्रतिष्ठानपुर की एक बहुत बड़ी फर्म माणकचन्द भागचन्द की दुकान पर पहुंचा। फर्म के मालिक सेठ भागचन्द स्वयं दुकान की गद्दी पर बैठे हुए थे। मुनिम, आदि सभी अपने-अपने कार्य में व्यस्त थे। सेठजी भी किसी बही में खोये हुए थे। अपने अभ्यास के अनुसार गुणचन्द्र दुकान की सीढ़ियां चढ़कर दरवाजे पर खड़ा हो गया और अपनी ओर किसी के ध्यानाकर्षण की प्रतीक्षा करने लगा। सहसा दुकान के मुख्यमुनीमजी की ही दृष्टि उस पर पड़ी। उन्होंने

पूछा—"कहिये, क्या चाहिये ?" और वे एकटक गुणचन्द्र के सौम्यस्मित मुख की ओर देखने लगे।

गुणचन्द्र ने गम्भीर एवं शान्त स्वर में कहा—"मैं यहां काम की तलाश में आया हूं। यहां कोई नौकरी की जगह हो तो……।'

"गुणचन्द्र की बात को बीच में ही काटते हुए मुख्य मुनीमजी ने कहा—"आप और नौकरी की तलाश में हैं। आपकी मुखाकृति तो बताती है कि आप बहुत बड़े भाग्यशाली हैं। आपको नौकरी की आवश्यकता क्यों पड़ गई ?"

"आपका सोचना किसी सीमा तक ठीक हो सकता है, किन्तु केवल आकृति और पोशाक से ही किसी व्यक्ति के आन्तरिक जीवन का निर्णय नहीं लिया जा सकता है। मैं वर्तमान स्थिति में नौकरी की ही खोज में हूं। यहां कोई स्थान खाली हो, तो बोलिये।" गुणचन्द्र ने सहज स्वर में कहा।

"अवश्य, आप जैसे सज्जन एवं भाग्यशाली पुरुषों के लिए कार्य की क्या कमी है ? आप जो भी कार्य करना चाहें, यहां रहिये। आपकी क्षमता के अनुकूल कार्य मिल जाएगा।"

"किन्तु नौकरी पर रहने के पूर्व मैं कुछ जानकारी भी कर लेना चाहता हूं। मुझे मेरी जिज्ञासाओं का समाधान

मिल जाए, तभी मैं कहीं नौकरी कर सकता हूं।" गुणचन्द्र ने जिज्ञासा की।

मुनीमजी ने मुस्कराते हुए कहा—"कहिये, आप क्या पूछना चाहते हैं? वैसे परिचय तो हमें आपको पूछना था, विपरीत आप ही प्रश्न कर रहे हैं। खैर पूछिये।"

"मैं यह जान लेना चाहता हूं कि इस फर्म के मालिक सेठ साहब के पास कितनी सम्पत्ति है, उनका व्यवसाय कितना फैला हुआ है, मुनीम....नौकर कितने हैं? क्या वे मुझे मेरी इच्छा के अनुकूल वेतन दे सकते हैं? इन सभी प्रश्नों का समाधान मिलने पर ही मैं यहां कार्य कर सकता हूं।"

गुणचन्द्र के बात करने के तरीके एवं उसके स्वाभिमान भरे स्वरों से सभी कर्मचारी ही नहीं, स्वयं सेठ भागचन्द्रजी भी अपने कार्य को छोड़कर गुणचन्द्र की बात सुनने एवं उसकी सौम्याकृति देखने लग गये। मुनीमजी तो गुणचन्द्र की शर्तें अथवा जिज्ञासाएं पर अवाक् हो रह गये। वे सोच नहीं पा रहे थे कि इतना सीधा सरल-सौम्य चेहरा भी ऐसे अटपटे प्रश्न कर सकता है? कुछ सावधान से होते हुए मुनीमजी कहने लगे—"भाई साहब, आपकी बात कुछ समझ में नहीं आई, आपको इन सब बातों से क्या प्रयोजन है? आप अपनी तनख्वाह की बात करिये और काम करिये।

सेठजी के पास जितना भी धन है, आप इस सब जानकारी से क्या करना चाहते हैं ?

"बात ऐसी है कि मेरी एक प्रतिज्ञा है, उसके पालन करने के लिये यह सब जानकारी आवश्यक है। बिना इस जानकारी के मैं नौकरी नहीं कर सकता हूं।" गुणचन्द्र ने स्पष्ट किया।

"यह जानकारी तो आपको कोई भी समझदार व्यक्ति नहीं देगा। कोई भी मालिक अपने घर का भेद किसी अनजाने व्यक्ति को कैसे बता सकता है ? और इस प्रकार आप कहीं भी नौकरी नहीं कर सकते हैं। मुनीमजी ने कहा।

"ठीक है, वह तो मेरे भाग्य की बात है। पुरुषार्थ करना मेरा कार्य है और मैं कर रहा हूं। यह मैं अच्छी तरह जानता हूं कि भाग्य चाहे कैसा भी क्यों न हो, पुरुषार्थ कभी व्यर्थ नहीं जाता है। मेरी मान्यता है कि पुरुषार्थ से भाग्य को बदला जा सकता है और मैं वही करने जा रहा हूं। मेरा पुरुषार्थ निरन्तर जारी रहेगा और उससे भाग्य को बदलना पड़ेगा। अच्छा नमस्कार।" गुणचन्द्र वहां से चलने लगा।

गुणचन्द्र दुकान की सीढ़ियां उतरने को ही था कि पीछे से सेठ भागचन्द्रजी ने उसे आवाज दी—"भाई

साहब, आप यों कैसे चले जा रहे हैं ? ठहरिये कुछ ज
पान तो करिये ।"

"असल में सेठ भागचन्द्रजी गुणचन्द्र के वाणी-व्यवहार, उसकी शालीनता एवं सौम्यता से अत्य
धिक प्रभावित हो चुके थे । इस प्रकार उसने जाते-जाते भाग्य और पुरुषार्थ की जो थोड़ी-सी सूक्ष्म चच
करदी थी, उसने तो सेठजी पर जादू ही कर दिया
सेठजी जो स्वयं पारखी थे, एकटक उसके चेहरे को दे
रहे थे । वे समझ गये थे कि यह लड़का भाग्यशाली है । इसका विशाल भाल स्पष्ट बता रहा है वि
यह उच्च-कुलीन खानदान का है और महान् भाग
लेकर आया है । इस प्रभाव से सेठजी ने यह निश्चय क
लिया कि इस युवक को किसी भी कीमत पर र
लेना है ।

सेठजी की आवाज सुनकर गुणचन्द्र ने पुनः लौटक
निवेदन किया, "क्षमा करें, मैं विना नौकरी लगे जलपा
भी नहीं कर सकता हूं । मेरी एक प्रतिज्ञा है, वह पू
होगी, तभी मैं जलपान करूंगा । और वह नौकरी ल
विना पूरी नहीं हो सकती ।" कहकर गुणचन्द्र पुन
मुड़ने लगा, तो सेठजी ने कहा—"कहिये, आपकी क्य
प्रतिज्ञा है ?"

"नहीं, नौकरी लगने के पूर्व यह भी मैं नहीं बत
सकूंगा । क्षमा करें, मुझे देरी हो रही है, मैं चलता हूं ।

"लीजिये, मैं ग्रापको नौकरी देता हूं। इस फर्म का मालिक हूं। पहले जिनसे ग्रापकी चर्चा हुई वे तो हमारे हैड मुनीमजी हैं। बोलिये, ग्राप क्या जानकारी चाहते हैं। ग्रापकी सभी शर्तें ग्रौर जिज्ञासाएं पूरी होंगी।" सेठजी ने दृढ़ता भरे शब्दों में कहा।

"जिज्ञासाएं वैसे मैंने रख ही दी हैं। पुनः उन्हें दोहरा देता हूं—"ग्रापके पास कितना धन है, व्यापार कितना फैला हुग्रा है? नौकर-चाकर कितने हैं?'

"इसमें ग्रापसे छिपाने की क्या बात है? मेरे पास करोड़ों की सम्पत्ति है, व्यापार बहुत फैला हुग्रा है, विभिन्न शहरों में बीसों दुकानें हैं ग्रौर सैकड़ों मुनीम, नौकर-गुमाश्ते ग्रादि हैं।"

"ठीक है। मैं ग्रापके यहां नौकरी कर सकता हूं परन्तु तनख्वाह मेरी इच्छानुसार लूंगा। तिजोरी की चाबियां भी मुझे मिलनी चाहिये।"

सेठजी ने तो सोच लिया था कि किसी भी कीमत पर इस भाग्यशाली युवक को यहां से जाने नहीं देना है। ग्रतः उन्होंने गुणचन्द्र की दोनों कठोरतम शर्तें भी स्वीकार करलीं ग्रौर कहा—"ग्राप चाहें उतनी तनख्वाह लें" ग्रौर हैड मुनीमजी से कहा—"तिजोरी की चाबियां इन्हें दे दें।"

सेठ भागचन्द्रजी की बात सुनकर हैड मुनीमजी ही नहीं, सभी कर्मचारी आश्चर्यचकित थे। किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि सेठजी को हो क्या गया है। बिना जान-पहचान किये ही इस प्रकार किसी को तिजोरी की चाबियां दे देना कहां तक उचित है? इस लड़के ने कहीं सेठजी पर सम्मोहन तो नहीं कर दिया? अनेक संकल्प-विकल्प होने पर भी सेठजी के सामने बोलने का साहस किसी में नहीं था। अतः मुनीमजी ने चाबियों का गुच्छा गुणचन्द्र की ओर फेंक दिया।

गुणचन्द्र ने चाबियों का गुच्छा उठा लिया, तो सेठजी ने गम्भीर मुस्कान के साथ कहा—"अब तो जलपान कर लीजिये और अपना कुछ परिचय भी तो दीजिये।"

गुणचन्द्र ने विनयपूर्वक किन्तु स्वाभिमान भरे स्वर में ही कहा—"जलपान की तो कोई बात नहीं है। वह तो अब आपके यहां करता ही रहूंगा। परिचय का जहां तक सवाल है, मुझे गुणचन्द्र कहते हैं। इससे अधिक परिचय आप मेरी कार्यक्षमता से समय-समय पर प्राप्त करते रहेंगे।"

"बहुत सुन्दर! आपका नाम ही तो आपका परिचय दे रहा है। गुणचन्द्र शब्द ही आपके गुण को प्रगट कर रहा है। खैर, अभी आप रह कहां रहे हैं और भोजनादि की क्या व्यवस्था है?"

"अभी तो मैं एक काफिले के साथ चला ही आ रहा हूं। आज ही इस शहर में पहुंचा हूं और सीधे नौकरी की तलाश में बाजार में चला आया। अब कहीं कमरा वगैरह लेकर रहूंगा। भोजन तो हाथ से ही बना लूंगा।"

"आप ऐसा क्यों करते हैं? यह आपकी ही दुकान है और ऊपर आपका घर है। दुकान पर सो जाया करें और ऊपर भोजन कर लिया करें। क्यों हाथों से रोटी सेकने की खटपट में पड़ते हैं। मेरे खयाल से आपको रोटी बनाने का अभ्यास भी नहीं होगा।" सेठजी ने सुझाव दिया।

"आपका अनुमान सही है। आज तक मैंने कभी चूल्हा फूंका नहीं है, अतः अभ्यास का तो सवाल ही नहीं है। और फिर आपके यहीं खाना और सोना मिल जाए, तो फिर चाहिये ही क्या? आपकी इन अहेतुकी कृपा के लिए कृतज्ञ हूं।" कहकर गुणचन्द्र वहीं बैठ गया और सेठजी से अपने योग्य कार्य सौंपने का निवेदन करने लगा।

"काम तो आपने अपना चुन ही लिया है। अब तजोरी की चाबियां आपके हाथ में आ गई है, तो आपको हिसाब-किताब का पूरा कार्य देखना ही है।' कहते हुए सेठजी ने हैड मुनीमजी को संकेत करके समीप

बुलाया और कहा–"आप अपना कार्य इन्हें समझा दें किन्तु यह न समझ लें कि इन्हें आपके स्थान पर र लिया है । आप तो अपनी जगह हैं ही । आपकी सेवा को मैं भुला नहीं सकता हूं । अभी कुछ दिन ऊपर सारी देखरेख करें और इन्हें बहीखाते सम्भलाकर सा व्यवस्था बतला दें ।"

मुनीमजी ने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया औ गुणचन्द्र को संकेत कर अपनी बैठक पर ले गये । करी घण्टे भर में गुणचन्द्र को सम्पूर्ण कार्य समझा दिय। गुणचन्द्र ने मुनीमजी के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित कर हुए कहा–"क्षमा करें, आपको कष्ट दिया । कृपा कर समय-समय पर मेरा मार्गदर्शन करते रहें । मुझे अप ही पुत्र समझें । साथ ही मेरे कारण आपके किसी का अथवा प्रतिष्ठा में कोई आंच आती हो, तो निःसंको मुझे सावधान करते रहें ।"

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर गुणचन्द्र ने अप सामायिक (धार्मिक क्रिया विशेष) आदि धर्मानुष्ठान नित्य कर्म से निवृत्त हो तिजोरी से दो सौ रुपये निका और अपने वेतन के रूप में बही में लिखकर चल प शहर के बाहर । शौचादि से निवृत्त हो वापस आ समय जहां कहीं दीन दुःखी, लूले-लंगड़े, अपंग दान पा मिले उन्हें यथोचित पदार्थ वितरण करके लौट आया।

यों प्रतिदिन दो सौ रु० अपने वेतन के रूप से लेना और उन्हें कभी विद्यालय के गरीब छात्रों में, तो कभी चिकित्सालयों के गरीब मरीजों में लगा देना उसका नित्य क्रम हो गया। दस-पन्द्रह दिन में प्रतिष्ठानपुर में गुणचन्द्र की यशोगाथाएं गाई जाने लगीं। चारों दिशाओं में गुणचन्द्र सेठजी के नये दानी मुनीमजी के नाम से प्रतिष्ठित हो गया। जिधर निकलता उधर सैंकड़ों नेत्र उसकी आकर्षकता से मुग्ध हो जाते और सैंकड़ों दीन-दुःखियों के आशीर्वाद उस पर बरसने लगते। जिधर दृष्टि पड़े, उधर एक ही चर्चा-सेठजी के नये मुनीमजी क्या आए हैं, गरीबों के देवता आ गये हैं।

गुणचन्द्र अपनी जितनी प्रशंसा सुनता, सिर झुका लेता और मन ही मन सेठजी की उदारता के प्रति भाव-विभोर हो अनवत हो जाता। कभी कुछ बोलना पड़ता, तो इतना ही बोलता कि यह सब सेठ भागचन्दजी की उदारता है। वे ही अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग कर रहे हैं। मैं तो उनकी आज्ञा का पालन करने वाला नौकर हूं।

गुणचन्द्र का गली-गली में फैलने वाला यश-सौरभ सैंकड़ों व्यक्तियों को आह्लादित कर रहा था, तो कुछ लोगों के लिये वह ईर्ष्या का विषय भी बन रहा था। उन व्यक्तियों में प्रमुख थे हेड मुनीमजी, जिन्हें यह ईर्ष्या होने लगी कि इस नये मुनीम ने आखिर लोगों पर क्या

जादू कर दिया है, जो चारों तरफ इसकी यशोदुन्दुभी वज रही है। सेठजी पर भी इसने आते ही कैसा सम्मोहन का जादू कर दिया कि जिन्होंने तिजोरी की चावियां भी इसे दिलवादीं। या तो लड़का वहुत अधिक पुण्य-शाली है, या इसके पास कोई सम्मोहन की कला है। कुछ भी हो इसका पता तो लगाना ही होगा कि इसकी इतनी जय-जयकार क्यों हो रही है। सुनता हूं यह वहुत दान करता है। किन्तु यदि ऐसा दानी और धनवान होता, तो यहां नौकरी करने क्यों आता? जो भी हो, इस राज की जानकारी अवश्य लेनी चाहिये?

गुणचन्द्र की तेजस्विता के कारण मुनीमजी उसे पूछने का साहस तो नहीं कर सके, किन्तु नये मुनीम की इतनी ख्याति उनकी सहन-सीमा के वाहर थी।

इस राज को प्राप्त करने लिये उन्होंने गुणचन्द्र का कुछ-कुछ पीछा करना प्रारम्भ किया और अपने अधीनस्थ कुछ कर्मचारियों को गुणचन्द्र की सभी गति-विधियों पर नजर रखने का संकेत कर दिया। परिणाम स्वरूप उन्हें ज्ञात हुआ कि गुणचन्द्र दो सौ रुपए प्रति दिन तिजोरी से निकालता है और उनसे कोई वस्तु खरीदकर गरीवों में वांट देता है। इस रहस्योद्‌घाटन के वाद उन्होंने एक दिन वहीखाता उठाकर देखा तो उसमें प्रतिदिन दो सौ रुपये वेतन के रूप में लिखे गये थे। यह सब देखकर मुनीमजी के धैर्य का वांध टूट

गया। वे सीधे सेठजी के पास गए और कहने लगे—"सेठ साहब, यह आपकी नौकरी सम्भालिए। मैं अब आपके यहां नहीं रह सकता।"

सेठ भागचन्द जी ने कुछ चौंकते हुए-से किन्तु शान्त स्वरों में पूछा, "बात क्या है? आप अचानक यह कैसी बात कर रहे हैं? आपका किसी ने कुछ अपमान किया है या और कोई अनहोना प्रसंग बन गया है? आप पहले तो बताएं। अचानक नौकरी छोड़ने की बात क्यों उठ खड़ी हुई है?"

"नहीं अपमान, आदि की कोई बात नहीं है। बात इतनी ही है कि वे आपके नये मुनीमजी खुले हाथों आपकी लक्ष्मी लुटाकर सस्ती वाहवाही लूट रहे हैं। हमें तो एक माह का दो सौ रुपया नहीं मिलता और वे कंवर साहब एक दिन के दो सौ रुपये वेतन लेते हैं और दातार बनकर लुटा देते हैं।" मुनीमजी ने कुछ आवेश-भरे शब्दों में कहा।

"ठीक है, इसका कोई समाधान निकालेंगे। नये मुनीमजी से बात करेंगे। किन्तु इसमें आपके लिए नौकरी छोड़ने जैसी तो कोई बात नहीं है। आप इतने आवेश में क्यों आ रहे हैं?

"सेठ साहब, आपके दिमाग पर तो उसने जादू ही कर दिया है। आपको उसकी कोई भी बात बुरी नहीं

लगती। इस तरह यदि वह सम्पत्ति लुटाता रहा, त
दिवाला निकलते देर नहीं लगेगी। लोग तो मुझे ह
कहेंगे कि तुम्हारे जैसे व्यक्ति के होते हुए सेठजी क
दिवाला निकल गया। सेठ साहब ऐसी बदनामी लेने
लिये मैं आपकी नौकरी नहीं कर सकता हूं। मेरी भ
तो अपनी कुछ इज्जत है। मैं सरेआम अपनी इज्ज
कैसे खराब होने दूंगा! अभी से बाजार में बड़ी-ब
दुकानों पर चर्चा होने लगी है और वे लोग आपक
मजाक उड़ाने लगे हैं कि सेठजी बड़े अच्छे मुनीम
चक्कर में फसे हैं, जो थोड़े दिनों में दिवाला निकालक
उन्हें निहाल कर देगा।"

सेठजी ने किसी तरह शान्तिपूर्वक मुनीम जी क
समझाया और विदा किया—"आप चिन्ता न करें।
गुणचन्द्रली से बात करके उन्हें समझाने का प्रया
करूंगा। किन्तु आपको भी यह तो समझना ही होग
कि यदि वे दो सौ रु० अपना वेतन ले रहे हैं तो इस
आपको अपनी योग्यता की कमी नहीं नजर आन
चाहिए। आपकी क्षमता जो—कुछ है, और वर्षों से ज
आप इस फर्म की सेवा कर रहे हैं, उसे मैं बड़े सम्मा
की दृष्टि से देखता हूं।"

मुनीमजी कुछ-कुछ सन्तुष्ट होकर चले गये, तो से
जी ने एक नौकर को भेजकर गुणचन्द्र को बुलवाया

गुणचन्द्र बड़े विनम्र भाव से सेठजी के समक्ष उपस्थित हुआ और हार्दिकतापूर्वक सेठजी को प्रणाम किया। सेठजी ने अत्यन्त स्नेह के साथ गुणचन्द्र को अपने समीप बिठाया और मधुर शब्दों में पूछा—यहां आपको किसी भी प्रकार की कोई तकलीफ तो नहीं है ? खाने-पीने और रहने आदि में आप कोई संकोच तो नहीं कर रहे हैं।"

"नहीं सेठ साहब, आप जैसे उदार हृदय, दयालु पिता के यहां मुझे क्या तकलीफ हो सकती है ! मुझे बड़ी खुशी है कि सेठानी साहब भी मुझे मां से बढ़कर प्यार देती हैं। खाने-पीने में मेरा बहुत ध्यान रखती हैं। मुझे तो आपकी पुनीत छाया-नीचे ऐसा लगता है कि जिस इच्छा को मेरे सगे माता-पिता पूरी नहीं कर सके आपकी उदारता एवं महानता ने मेरी उस इच्छा को पूरा किया। सेठ साहब, आपकी महानता का बयान मैं शब्दों में नहीं कर सकता हूं।" कहते हुए गुणचन्द्र भावुक हो उठा। उसके नेत्रों से श्रद्धा की कुछ बूंदें टपक पड़ीं।

गुणचन्द्र के भावपूर्ण शालीन व्यवहार से सेठजी के हृदय में भी आत्मीयतापूर्ण स्नेह का स्रोत उमड़ पड़ा। वे क्षण भर के लिये सेठ और मुनीम का रिश्ता भूल गये और गुणचन्द्र को अपने निकट खींचकर उसके मुंह पर

आंसू पोंछने के अन्दाज से स्नेह भरा हाथ फिराते हुए कहने लगे—"वेटा, इसमें भावुक होने की क्या बात है! मैंने ऐसा कौन-सा बड़ा काम कर दिया है! तुम्हारी शालीनता से प्रभावित होकर तुमने जो अधिकार मांगे, मैंने दे दिये और जो कुछ मैं सुन रहा हूं उससे मुझे विश्वास हो गया है कि मेरे दिये गए अधिकारों का दुरुपयोग नहीं होगा। किन्तु मैं एक बात पूछना चाहता हूं। यदि तुम बताना उचित समझो, तो बताना। तुम इतने कुलीन संस्कार-सम्पन्न युवक हो कि ऐसा युवक हजारों में मिलना मुश्किल है। वैसे जाति-पांति से मुझे मतलब नहीं है। तुम किसी भी जाति के क्यों न हो, तुम्हारी शालीनता ही तुम्हारी महानता रही है। मैं तो इतना ही जानना चाहता हूं कि तुम किस कारण से अपने घर परिवार को छोड़कर यहां चले आए।"

"वैसे यह सब कुछ मैं किसी को बताना नहीं चाहता। किन्तु आपने मुझे एक पिता का प्यार दिया है और इतना अधिक दिया कि मेरे सगे पिता भी नहीं दे सके। इसलिए मैं आपसे कुछ छिपाना नहीं चाहता। मेरे पूज्य पिताजी के पास करोड़ों की सम्पत्ति है। मैंने एक बार आचार्य श्री विमल कीर्ति के प्रवचन से प्रभावित होकर यह प्रतिज्ञा कर ली कि अपने पास होते हुए मैं दो सौ रुपये प्रतिदिन दान करूंगा। कुछ दिन तो मैं दान करता रहा। एक दिन हमारे मुनीमजी ने पिताजी से शिकायत

कर दी और कुछ वाद-विवाद के पश्चात् पिताजी ने मुझे घर से निकाल दिया। उन्होंने कहा कि हाथों से कमाओ, फिर दान करो और मैं माताजी का आशीर्वाद लेकर घर से निकल गया। मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि अपने भाग्य को पुरुषार्थ की कसौटी पर कसना है। मुझे घर से निकालने के बाद इधर प्रतिष्ठानपुर की ओर आते हुए एक काफिले का साथ मिल गया और मैं यहां तक आ पहुंचा। पहले कुछ अन्य दुकानों पर गया, किन्तु मेरे बेतुके प्रश्नों को सुनकर सभी ने नौकरी के लिये इन्कार कर दिया।....आपने वह उदारता दिखाई कि जिसका मैं जन्म-जन्म तक कर्जा नहीं चुका सकता। मैंने आपके समक्ष अपनी इच्छा के अनुसार वेतन लेने का ज्वलन्त प्रश्न इसीलिए रखा कि मैं अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर सकूं। तदनुसार मैं दो सौ रुपये प्रतिदिन अपने वेतन के लेता हूं और गरीबों में बांट देता हूं। इसके अलावा भोजन, आदि आवश्यता के अनुसार यहां मिल जाता है। हाथ खर्च के लिये मुझे एक पैसे की भी आवश्यकता नहीं है....। आपकी इस अहेतुकी कृपा के लिये मैं आपका सदा ऋणी रहूंगा।" गुणचन्द्र ने नतशिर ही संक्षिप्त निवेदन कर दिया।

सेठजी गुणचन्द्र के एक-एक शब्द को तन्मयता पूर्वक सुनते रहे। गुणचन्द्र की बात पूरी होने पर उन्होंने कहा—"बेटा, तुम यहां आनन्दपूर्वक रहो। अपनी

प्रतिज्ञा का बराबर पालन करो और किसी भी प्रकार की कोई चिन्ता न करो । दो सौ रु० प्रतिदिन दान करना कोई सामान्य बात नहीं है । इसके लिये प्रतिज्ञा लेने से पहले तुम्हें कुछ सोचना था, किन्तु तुम निश्चिन्त रहो । तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होगी । मैंने जो वचन दे दिया कि तुम अपनी इच्छानुसार वेतन ले सकते हो, उसमें किञ्चित् मात्र भी इधर उधर होने वाला नहीं हूं । यद्यपि मैं कुछ-कुछ सुन रहा हूं कि तुम्हें रखने के कारण बाजार में मेरी हंसी उड़ाई जा रही है । किन्तु मैं इसकी कोई परवाह नहीं करता । मैं यह अच्छी तरह जानता हूं कि दान में दिया गया पैसा व्यर्थ नहीं जाता है । वह दस गुणी शक्ति लेकर वापस आता है और फिर वह दान भी तुम्हारे जैसे भाग्यशाली लड़का करे, तो उसमें तो अशुभ का कोई सवाल ही नहीं है । हां, इतना अवश्य ध्यान रखना कि हैड मुनीमजी अथवा अन्य कोई नौकर कुछ उल्टा-सीधा बोल दे, तो घबराना नहीं । उनके किसी षड़यन्त्र में भी मत आ जाना । निष्ठा शालीनता एवं सच्चरिता के साथ कार्य में लगे रहना ।

सेठ भागचन्दजी के विचारों को सुनकर गुणचन्द्र गद्गद् हो गया । उनकी महानता पर उसका मन अन्दर ही अन्दर श्रद्धान्वित हो झुका जा रहा था । वह सोचने लगा कि बिना किसी परिचय के सेठजी ने मुझे कितना उदारतापूर्ण सहयोग दिया है । जिस धन के पीछे मुनीम

जी के कहने मात्र से मुझे अपने पिता ने घर से निकाल दिया, उस धन को अपनी आंखों के सामने दान दिये जाते हुए देखकर भी यह महान् व्यक्ति मेरा उत्साह बढ़ा रहा है। गुणचन्द्र इसी चिन्तन में अत्यन्त भावुक हो सेठजी के चरणों में अपना सिर रख कर उन्हें अपने आंसुओं से धोने लगा।

सेठजी ने स्नेहपूर्वक गुणचन्द्र के सिर पर हाथ फिराया और उसे सावचेत करते हुए कहा—"देखो बेटा, इतने अधिक भावुक न बनो। तुम इस घर को अपना घर समझो और इसकी प्रतिष्ठा एवं उन्नति का ध्यान रखते हुए इच्छा हो, वैसे शुभ कार्य करो। अच्छा, अब जाओ। अपने कार्य में लगो।"

सेठजी का संकेत पाकर गुणचन्द्र उठा और सेठजी को प्रणाम कर दुकान पर चला गया। इधर सेठजी ने किसी नौकर को भेजकर हैड मुनीम को बुलाया और कहा—"मैंने नये मुनीमजी से बात करली है। वे मेरे पैसों का दान नहीं करते हैं। अतः आपका यह कथन असत्य है कि वे मेरा धन उड़ा रहे हैं। वे अपना वेतन ही दान करते हैं।"

"सेठ साहब, यह तो द्राविड़ प्राणायाम वाली बात है। वे दो सौ रुपया रोज दान कर रहे हैं और उन्हें अपनी तनख्वाह के रूप में लिख देते हैं। क्या वेतन के

रूप में लिख लेने मात्र से वह पैसा उनका हो गया ! वे इतने वेतन के योग्य भी हैं ! नहीं, तो यह आपका धन उड़ाना ही हुआ ।" मुनीमजी ने बीच में ही बात काटते हुए कहा ।

"मुनीमजी, आप विषय के एक पहलू पर ही विचार कर रहे हैं । आप दूसरे पहलू से भी सोचें कि वह युवक कितना ईमानदार है । जब मैंने उसे वचन दे दिया है कि तुम्हारी इच्छा हो उतना वेतन लेना, तो भी वह दो सौ रुपया रोज ही लेता है और वह भी इसलिये कि उसके दो सौ रुपये रोज दान करने की प्रतिज्ञा है । यदि वह चाहता, तो दो हजार रु० रोज भी ले सकता था । तब भी मैं उसे मना नहीं कर सकता था । मैं तो वचन दे चुका था । आप जरा गम्भीरता से सोचें । वह अपनी प्रतिज्ञा के निर्वाह के अलावा एक पैसा भी हाथ खर्ची का नहीं लेता है । वह अवश्य ही कोई श्रीमन्त घराने का कुलीन-उदार दिल युवक है । और तभी उसने इतनी बड़ी प्रतिज्ञा ली होगी । हो सकता है उसके पिता से नहीं निभ पाई हो, और वह यहां आ गया हो । इसके अलावा मुझे तो वह एक महान् भाग्यशाली लड़का लगता है । इसलिए आप इस विषय पर अधिक चर्चा न करें, तो अच्छा है ।"

सेठजी की बात मुनीमजी के गले नहीं उतरी । फिर भी सेठजी के बोलने के ढंग को देखते हुए उनको आगे

कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई। हताश चेहरा लिये वे यह कहते हुए चले गए "ठीक है, जैसा उचित समझें, सोचें। मुझे जैसा लगा, मैंने निवेदन कर दिया।"

मुनीमजी दुकान पर पहुंच कर काम करने लगे। किन्तु उनका मन काम में नहीं लगा। रह-रहकर उन्हें यही विचार सताता रहा कि मैं सेठ साहब के यहां इतने वर्षों से काम कर रहा हूं। मुझे चालीस रुपये माहवार मिलते हैं। मेरे साथियों को पच्चीस, तीस और पैंतीस रुपये से ज्यादा नहीं मिलते। और यह कल का छोकरा मेरे पांच माह की तनख्वाह एक दिन में लेता है और मुफ्त में चारों तरफ अपनी प्रतिष्ठा जमाकर वाहवाही लूट रहा है। इतना ही नहीं, सेठजी पर भी इसने पूरा जादू कर दिया है। वे इसके विरुद्ध एक शब्द भी सुनना पसन्द नहीं करते। ठीक है, मुझे ही अब कुछ योजना बनानी पड़ेगी इसकी छवि बिगाड़ने के लिये। नहीं तो थोड़े दिनों में ही ये बाबू साहब तो इतने चमक जाएंगे कि मुझे कोई पूछेगा ही नहीं।

हैड मुनीमजी के मन में ईर्ष्या की आग बहुत तेजी से जलने लगी। आप जानते हैं—जिसके मन में किसी दूसरे की उन्नति देखकर ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है, वह अपना आपा खो बैठता है। दूसरे का अहित करने की धुन में उसे अपने हिताहित का भी ध्यान नहीं रहता है। वह यह भूल जाता है कि दूसरों को जलाने वाली माचिस

की काडी (तीली) को पहले खुद ही जलना पड़ता है उसकी एक ही तमन्ना रहती है कि किस तरह अपने प्रतिद्वन्द्वी को अपने मार्ग से गिरा कर नीचा दिखाया जाय। बस इसी उधेड़-बुन में थे हैड मुनीमजी। योजना बनाने में ही जब कुछ दिन निकल गये, तो उन्हें लगा कि अब तो नगर के कुछ गणमान्य व्यक्तियों में भी गुणचन्द्र की प्रतिष्ठा फैल चुकी है। लोग उसे बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं। उसके साथ बैठने और बात-चीत करने में प्रसन्नता अनुभव करते हैं। गुणचन्द्र की इस बढ़ती हुई प्रतिष्ठा ने मुनीमजी की असूयाग्नि में घृत का काम किया। वे मन ही मन जल-भुनकर रह गये। आखिर उन्होंने एक अभद्र योजना बना ही ली।

हैड मुनीमजी ने अन्य नौकरों को बहकाना चालू कर दिया। कहने लगे—"आप लोग सुन रहे होंगे, नए मुनीमजी की कीर्ति चारों तरफ फैलती जा रही है। किन्तु इसका कारण आपको पता नहीं होगा। वे दो सौ रुपए रोज का दान करते हैं। और वह पैसा सेठजी से अपने वेतन के रूप में लेते हैं जरा विचार करें। हम लोग इतनी मेहनत करते हैं, फिर भी हमें एक महीने में मुश्किल से पच्चीस-तीस रुपए मिलते हैं। और ये नये साहब एक दिन के दो सौ रुपए लेते हैं। यह सेठजी का सरासर अन्याय है कि नहीं! इस प्रकार के अन्याय को

हम कब तक सहन करते रहेंगे। हमें भी अपने हित के लिए कुछ सोचना चाहिए, नहीं तो ये नये मुनीमजी सेठजी पर हावी हो जायेंगे और थोड़े दिनों में ही हमें कोई पूछने वाला नहीं मिलेगा, या हमारी छुट्टी ही हो जाएगी।"

जैसा कि छोटे तबके के लोगों का सोचने का तरीका होता है, वही प्रभाव हुआ मुनीमजी की बात का नोकरों पर। सामान्य श्रेणी के कर्मचारी वर्ग का प्रायः यह स्वभाव होता है कि उन्हें उनका मुखिया चाहे जिस दिशा में खींचकर ले जा सकता है। आजकल की आम हड़तालों में यही सब कुछ तो होता है। हैड मुनीमजी ने कर्मचारियों को गुमराह किया और उनके मानस में यह बात बिठाई कि हमारे साथ अन्याय हो रहा है। सभी कर्मचारियों ने मिलकर सब भार हैड मुनीमजी पर ही डाल दिया। उन्होंने कह दिया कि वे तो उनके पीछे हैं, वे जैसा कहेंगे, सब करेंगे। वे ही उन्हें मार्ग दर्शन दें कि उन्हें क्या करना चाहिये। वास्तव में वे जो कुछ कह रहे हैं, वह उनके हित के लिये ही कह रहे हैं। वह नया मुनीम है भी ऐसा ही। सेठजी पर तो उसने आते ही जादू कर दिया। उससे निपटना तो बहुत आवश्यक है।

हैड मुनीमजी ने अपना तीर निशाने पर लगते हुए देखकर मन ही मन खुश होते हुए कहा—"साथियो, बस

व्यक्ति को यहां से हटाने के दो ही रास्ते हैं—या तो इ
पर कोई बड़ा लांछन (आरोप) लगाकर उसे परेश
कर दिया जाय ताकि वह खुद ही जाने को विवश
जाय या फिर हम सब सेठ साहब से अपना वेतन ब
की मांग करें और ऐसा नहीं करने पर सेठजी को सा
कह दें कि इस नये मुनीम को हटाएं, नहीं तो हम को
काम नहीं करेंगे।"

उनमें एक कुछ बुजुर्ग—अनुभवी एवं समझदा
कर्मचारी था। उसने कहा—"मुनीमजी, सेठजी न
मुनीमजी को कितनी भी तनख्वाह दें, उससे हमें क
हानि है! हमें अपने कार्य के अनुरूप वेतन मिल र
है। अतः हमें उस बालक (नये मुनीम) के पीछे न
पड़ना चाहिये।'

हैड मुनीम जी ने बात कुछ बिगड़ती देख रोष भ
स्वरों में कहा—"आप इस बात को नहीं समझ रहे हैं
वह इस तरह सेठजी का धन लुटा रहा है कि थोड़े दि
में ही सेठजी का दिवाला निकल जाएगा। परिणा
क्या होगा, आप जानते हैं! एक तो हमारी रोटी रो
छिन जाएगी और दूसरे बदनामी हमारी होगी कि
सेठजी के ऐसे मुनीम-नौकर थे कि सब माल हड़प ग
और दिवाला निकाल दिया। अतः आप इस विषय
गहराई से सोचें।"

उस अनुभवी कर्मचारी ने कहा—"नहीं, मैं आपकी इस बात से सहमत नहीं हूं। हमारे सेठजी कोई अन्धे या पागल नहीं हैं, जो अपने सामने अपनी पूंजी लुटने देंगे। कुछ दिनों में वे खुद सोचेंगे। इसके उपरान्त भी आप उसे हटाना चाहते हैं, तो सेठजी से जाकर सारी स्थिति बतादें। किन्तु किसी पवित्र एवं निर्दोष व्यक्ति पर कोई झूठा कलंक या आक्षेप लगाकर उसे बदनाम करना अनुचित है। यदि आपने ऐसा कोई मार्ग अपनाया, तो मैं आपके इस षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ कर दूंगा। अतः आप समझदारी से काम लें।"

उस अनुभवी व्यक्ति की बात सुनकर हैड मुनीमजी एवं अन्य सभी कर्मचारी एकदम सहम गए। कुछ सरल होते हुए हैड मुनीमजी ने कहा—"हम कहां कह रहे हैं उस पर कोई लांछन ही लगाया जाय। मैंने तो दोनों मार्ग बता दिये। अब जैसा सभी को अच्छा लगे, वैसे किया जा सकता है।" अन्त में सभी ने यह निश्चय किया कि अपन सब चलकर सेठजी से ही निवेदन करें। इसी में लाभ है। या तो सेठजी अपना वेतन बढ़ा देंगे या उसे यहां से हटा देंगे।

यह निश्चय कर सभी व्यक्ति दूसरे दिन प्रातःकाल सेठजी के बैठक कक्ष में पहुंच गए। सबसे आगे हैड मुनीमजी थे और वे सबका नेतृत्व कर रहे थे। अतः

उन्होंने ही सेठजी से निवेदन किया—"हम सभी आपकी सेवा में कुछ निवेदन करने आए हैं। आप अनुमति दें, तो हम अपनी बात आपके समक्ष रखें।"

सेठजी ने बड़े प्रेम से सभी को अन्दर बुलाकर बिठाया और कहा—"आज ऐसी क्या समस्या आकर खड़ी हो गई, जो मेरे सभी कार्यकर्ता एक साथ उपस्थित हुए हैं? जो कुछ भी समस्या हो, आप निःसंकोच कहें।"

"समस्या एक ही है कि नये मुनीमजी जिस प्रकार से धन लुटा रहे हैं, वह हम सब की सहन-शक्ति से बाहर है। आप उन्हें दो सौ रुपया रोज का वेतन किस आधार पर देते हैं; हम लोग इतना परिश्रम करते हैं, फिर भी हमारा वेतन उसकी तुलना में नगण्य है। इससे हम सब की प्रतिष्ठा को चोट पहुंची है। अधिक योग्यता वाले को कम वेतन और कम योग्यता वाले को अधिक वेतन देना कैसे उचित माना जा सकता है? इससे हमारी योग्यता तिरस्कृत होती है। अतः हमारा निवेदन है कि या तो नये मुनीमजी का वेतन योग्यतानुसार किया जाय, या हमारा वेतन बढ़ाया जाय।" मुनीमजी ने स्पष्ट किया।

वेतनमान के साथ प्रतिष्ठा की बात सुनकर सेठजी विचार में पड़ गए। मुनीमजी का यह तर्क उन्हें कुछ

व जमदारा लगा। कुछ क्षण विचार कर सेठजी ने कहा— "देखिये आपको इस विषय को प्रतिष्ठा का मुद्दा नहीं बनाना चाहिये। मैं उनके (नये मुनीमजी) साथ वचन-बद्ध हूं। मैं उनका वेतन कम नहीं कर सकता। रहा सवाल आपकी वेतन वृद्धि का सो वह भी उनके अनुरूप मे तो किसी भी कीमत पर नहीं हो सकता है। यह मेरी व्यापारिक क्षमता के बाहर है। अब एक ही बात रह जाती है कि नये मुनीमजी को यहां नहीं रखा जाय। इस पर मैं विचार करूंगा और आपको सन्तुष्ट करने का प्रयास करूंगा। आप अपना कार्य यथावत् करते रहें। आपकी प्रतिष्ठा को कोई आंच नहीं आने दूंगा। किन्तु इतना अवश्य ध्यान रखें कि योग्यता का माप केवल के बाहर क्रिया-कलापों से ही नहीं होता है। कोई कोई व्यक्ति इतनी पुण्य प्रभा लेकर आता है कि उसके बैठे रहने मात्र से ही हजारों की आय हो जाती है। वह व्यक्ति हमें ऊपर से कुछ नहीं करता हुआ दिखाई देता है, किन्तु वह अदृश्य रूप में बहुत कुछ करता रहता है। मेरी अपनी परख के अनुसार नये मुनीमजी मुझे ऐसे ही पुण्यशाली व्यक्ति लगते हैं और इसीलिये मैंने उन्हें इच्छानुसार वेतन देना स्वीकार कर लिया है। फिर भी मैं आपकी भावनाओं का आदर करता हू और आपकी प्रतिष्ठा-सुरक्षा का सन्तोषप्रद समाधान निकालने का प्रयास करूंगा।"

सेठजी के विचारों से सन्तुष्ट हो सभी लोग चल दिये और अपने-अपने कार्य में लग गए। सेठजी अपने कक्ष में बैठे-बैठे गम्भीर विचारों में खो गए। उनके सामने अपनी वचनबद्धता की भारी समस्या थी। न तो वे गुणचन्द्र का वेतन कम कर सकते थे, और न उसे नौकरी से ही निकाल सकते थे। आखिर चिन्तन के द्वारा उनके मानस में समस्या का समाधान निकल आया। उन्होंने किसी नौकर को भेजकर गुणचन्द्र को बुलाया। गुणचन्द्र उस समय अपने दान का नित्य कर्म करके लौट रहा था कि सेठजी के संकेत पर सेठजी के पास पहुंच गया। सेठजी को प्रणाम कर निर्दिष्ट आसन पर बैठ गया।

गम्भीर किन्तु स्नेह भरे शब्दों में सेठजी ने गुणचन्द्र से बात प्रारम्भ करते हुए कहा—"क्यों चित्त तो प्रसन्न है ना ?"

"जी, आपके आशीर्वाद से पूर्णतया आनन्द में हूं। बस एक ही विचार उठता है बार-बार कि आपके स ऋण को कैसे चुका पाऊंगा। जब पिताजी ने घर से काल दिया, तो यही विचार आता था कि अब मेरी प्रतिज्ञा का क्या होगा ? प्रतिज्ञा ही नहीं, जीवन निर्वाह की भी समस्या सामने थी। इस अप्रत्याशित सुयोग-संयोग की तो मैं कल्पना ही नहीं कर सकता था। केवल

भाग्य के भरोसे एवं पुरुषार्थ के बल पर निकल पड़ा। भाग्य ने साथ दिया और आप जैसे उदारमना महापुरुष का सहयोग मिल गया। अब तो मेरी एक ही तमन्ना है कि आपके इस उपकार का बदला चुका सकूं। यद्यपि मुझे यह इस जन्म में तो असम्भव ही लगता है, फिर भी मैं पुरुषार्थ में विश्वास करता हूं। अतः मेरी आत्म-साक्षी कहती है कि मैं आपका कर्ज चुका सकूंगा।'

"खैर, छोड़ो यह उपकार वगैरह की चर्चा। मैंने आपका क्या उपकार किया है? यह तो आपकी पुण्याई है, जो आपको पद-पद पर सहयोग मिलते ही रहेंगे....। अभी मैंने आपको कुछ परामर्श करने के लिये बुलाया है। वैसे आपके किसी भी कार्य से मुझे कोई आपत्ति नहीं है और न मैं आपके वेतन में एक पैसा भी कम करना चाहता हूं। आपके इस वेतन से मुझे बहुत प्रसन्नता है कि मेरे पैसे का आपके माध्यम से परमार्थ में उपयोग हो रहा है। किन्तु हेड मुनीमजी तथा अन्य कर्मचारियों के मन में आपके इस वेतन से ईर्ष्या उत्पन्न हो गई है। वे यह चाहते हैं कि उनका वेतन भी कार्य के अनुपात से बढ़ाया जाय। उनके अनुसार नये मुनीमजी को इतना वेतन देना, उनका अपमान है। वे इस अपमान को सहन नहीं करेंगे और सब काम छोड़ देंगे।

"ऐसी स्थिति में मैंने विचार किया कि आप कुछ

दिनों के लिए महेन्द्रपुर चले जाएं। वहां भी अपनी दुकान है। आप वहां का कार्य देखते रहें और अपना वेतन बराबर लेते रहें। वहां अपना रसोड़ा भी चलता है, जहां आप अपनी इच्छा के अनुसार भोजन करते रहें। क्यों, कैसा रहेगा?"

"सेठ साहब, मैं तो आपका सेवक हूं। आप जैसा आदेश देंगे, उसके पालन के लिये सदा तत्पर रहूंगा। किसी विषय में मुझे पूछने की आवश्यकता नहीं है। आप तो निःसंकोच आदेश दें कि मुझे जाना है। हां, एक चिन्ता अवश्य है कि जहां मुझे जाना है, कहीं वहां के मुनीमजी के द्वारा पुनः कोई आन्दोलन नहीं उठा दिया जाय। यहां तो आप सब कुछ सम्भालने वाले हैं। वहां पर कौन सम्भालेगा?"

गुणचन्द्र के विचार सेठजी को उचित ही लगे। उन्होंने कहा—"बात तो आपकी ठीक ही है। यह समस्या तो सभी दुकानों पर उत्पन्न हो सकती है। इसका समाधान तो एक ही हो सकता है। पांचाल देश में व्यापार चलने के बहुत आसार हैं, किन्तु उधर अभी अपनी एक भी दुकान नहीं है। आप चाहें तो यहां से पूंजी लेकर चले जाएं और वहां नयी दुकान लगा लें। चूंकि वह काम नया ही होगा, इसलिये उसका पूरा अधिकार आपका ही होगा। आप जितना व्यापार बढ़ा

कें, बढ़ाएं और अपना वेतन लेते रहें। वेतन के अतिरिक्त भोजन आदि की व्यवस्था के लिये भी निःसंकोच खर्च करते रहें।"

"ठीक है। जैसा भी आप उचित समझें, आज्ञा फरमा दें। मुझे यहां से कब जाना होगा, यह भी सूचित कर दें।"

"मेरे खयाल से मणिपुर नगर व्यापार का अच्छा केन्द्र है। आप कल ही मणिपुर के लिये प्रस्थान कर जाएं। आप जैसे पुण्यशाली इन्सान के लिये मुहूर्त्त आदि कोई महत्त्व नहीं रखते। मैं अभी अर्थव्यवस्था जुटा देता हूं। प्रातः आप पचास हजार रु० लेकर यहां से चल दें।'

सेठजी के निर्देश को शिरोधार्य कर गुणचन्द्र दुकान पर चला गया। दिन भर अपने कार्य में व्यस्त रहा। सन्ध्या भोजन के समय उसने सेठानीजी से चरण-स्पर्शपूर्वक निवेदन किया—"माताजी, कल प्रातःकाल मैं मणिपुर जा रहा हूं। इतने दिनों तक आपको बहुत कष्ट दिया। इसके लिये क्षमा चाहता हूं। आपने जैसा मातृ-स्नेह मुझे दिया, वैसा ही स्नेह बनाए रखें और आशीर्वाद दें कि मैं अपने नियम का पालन करते हुए अपने कार्यक्षेत्र में प्रगति कर सकूं।"

सेठानीजी ने जब अचानक अप्रत्याशित समाचा सुने, तो उन्हें कुछ पीड़ा हुई। सेठानी के एक सुपुत्री थ १२-१३ वर्ष की। उसके बाद सेठानी का स्नेह गुणच पर ही हो गया था। वह गुणचन्द्र की शालीनता ए चरित्रनिष्ठा से बहुत प्रभावित हो चुकी थी। गुणच के प्रति पुत्र जैसा ही प्यार उनके हृदय में उत्पन्न हो गया था। अतः गुणचन्द्र के बाहर जाने की बात से उन हृदय में थोड़ा आघात पहुंचा। उन्होंने भावुक होते हु स्नेह भरे स्वरों में गुणचन्द्र को पूछा—"क्यों बेटे, तु मणिपुर क्यों जा रहे हो? वहां से वापस कितने दिनों आ जाओगे?"

गुणचन्द्र ने भावुक मन से ही जवाब दिया— "माताजी! सेठ साहब वहां एक नई दुकान लगान चाहते हैं, उसे देखने के लिए ही मुझे वहां जाने क आदेश हुआ है। इसमें मुझे भी प्रसन्नता ही है। यद्य आप जैसी मां एवं सेठ साहब जैसे पिता का आश्र छूटेगा, फिर भी जिसमें सेठ साहब को लाभ हो औ उनकी आत्मा को शान्ति मिले, वह कार्य मैं अ प्रसन्नता से करूंगा।"

सेठानी ने अधिक चर्चा करना उचित नहीं समझ कहा—"ठीक है, बेटा। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे सा है। तुम आनन्दपूर्वक विदेश यात्रा करो। तुम्हा

पुण्यवानी तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़ी आयेगी। हां, सुबह मुझसे मिले बिना मत जाना। मैं मार्ग में खाने लायक नाश्ता तैयार कर दूंगी, वह लेते जाना।"

गुणचन्द्र ने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया और सेठानीजी को प्रणाम कर वहां से दुकान पर चला आया। सन्ध्या को हैड मुनीमजी आदि सभी कर्मचारियों से क्षमा याचना की और अपनी तैयारी में लग गया। दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व ही सेठ-सेठानी से अश्रुपूरित नेत्रों से विदा लेकर चल पड़ा मणिपुर की ओर। सेठजी ने करीब पचास हजार की पूंजी उसके साथ करदी। बैलगाड़ियों में पैसा एवं माल भरवा दिया और चार नौकर साथ कर दिये। गुणचन्द्र की सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखने का संकेत भी एक प्रौढ़ अनुभवी नौकर को सेठजी ने कर दिया।

गुणचन्द्र सेठ-सेठानी को प्रणाम करके पुनः अपने भाग्य को पुरुषार्थ की कसौटी पर कसने के लिए निकल पड़ा। मार्ग में प्रतिदिन प्रातः उठकर धार्मिक उपासना करना एवं २०० रु० का दान करना उसके जीवन का अभिन्न अंग था। यों मार्ग भर दान के द्वारा अपनी कीर्ति का सौरभ छोड़ते हुए गुणचन्द्र मणिपुर पहुंच गया। सर्वप्रथम वह कुछ भेंट योग्य पदार्थ लेकर नगर के सम्राट् के समीप गया और अपना परिचय दिया। सम्राट् ने

प्रसन्न होकर उसके व्यापार एवं रहने योग्य स्था
व्यवस्था करवादी। साथ ही संकेत कर दिया कि
यदा-कदा राज दरबार में उपस्थित होता रहे एवं
भी कार्य हो तो सूचित करदे।

सम्राट् को प्रसन्न कर गुणचन्द्र गणमान्य नगर
से भी मिला और सबसे सामान्य परिचय प्राप्त
अपने व्यापार कार्य को व्यवस्थित करने में लग
लगभग १०-१५ हजार की पूंजी तो मार्ग में दान
नौकरों आदि की व्यवस्था में ही पूरी हो गई थी।
जो ३५-४० हजार की सम्पत्ति बची, उसमें से
व्यापार जमते-जमते प्रतिदिन दो सौ रुपये निकलते
रहे थे। इधर दो-तीन माह तक व्यापार अच्छा जम
पाया और उधर पूंजी समाप्ति पर आ गई। जि
खर्च होता, उसके अनुपात से आय हो नहीं पा रही
अतः अब गुणचन्द्र को कुछ-कुछ चिन्ता सताने लगी
बहुत कुछ चिन्तन के पश्चात् उसने सेठ भागचन्दजी
एक पत्र लिखा कि अभी व्यापार जम नहीं पाया है
पूंजी प्रायः समाप्ति पर है, अतः कृपा करके प
हजार रु० और भिजवाने का कष्ट करें।

पत्र हैड मुनीमजी के हाथों आ गया और उन
अन्य कर्मचारियों के समक्ष उसे मनोविनोद के रू
प्रस्तुत करते हुए कहा- "देखो, ये नये मुनीमजी तो

जी का दिवाला निकालने पर ही तुने हैं। हजारों रुपये तो यहां लुटाये। फिर पचास हजार का माल साथ ले गये और ये पचास हजार और मंगवा रहे हैं।"

सभी कर्मचारी विनोद के मूड़ में ही थे कि इतने में सेठजी पहुंच गये। मुनीमजी ने सेठजी के समक्ष पत्र बढ़ाया और कहा—"लीजिये, यह आपके नये मुनीमजी का पत्र है। वे पचास हजार रुपये और मंगवा रहे हैं।"

सेठजी ने पत्र पढ़ा और गम्भीरतापूर्वक कहा—"देखिये, नयी दुकान चलाने में और नये शहर में प्रतिष्ठा जमाने में समय और धन लगता ही है। अपनी बड़ी पेढी है और इसकी चारों तरफ प्रतिष्ठा है। अतः आप इसे चर्चा का विषय न बनाकर पचास हजार रुपये भिजवाने की व्यवस्था करदें।"

"सेठ साहब, इस तरह धन लुटाना मुझे पसन्द नहीं है। यों उड़ाने के लिये मैं पैसा नहीं भेजूंगा।" मुनीमजी ने कुछ रूखे स्वर में कहा।

"देखिये मुनीमजी, आप अपनी सीमा में ही रहकर कार्य करें। धन लुटाने और नहीं लुटाने की बात मैं भी समझता हूं। आपका कार्य केवल आदेश का पालन करना है। मेरे धन की चिन्ता आपसे अधिक मुझे है। आपकी मांग के अनुसार मैंने नये मुनीमजी को यहां से

हटा दिया। इसका मतलब आप यह समझ रहे हैं कि सेठ हमारी गरज करेगा। आप इस घमण्ड में मत रहिये। यहां अनेकों व्यक्ति मिल सकते हैं आप से अच्छा कार्य करने वाले।" अन्य छोटे कर्मचारियों के सामने हैड मुनीमजी ने मुंहजोरी की, अतः सेठजी को आवेश आ गया। आवेश में ही सेठजी ने हैड मुनीमजी से कहा—"लाइये, चाबियां कहां है ? मैं खुद ही कर लूंगा व्यवस्था रुपये की।"

हैड मुनीमजी ही नहीं, सभी कर्मचारी सन्न रह गये। आज से पूर्व सेठजी को इतने आवेश में कभी किसी ने नहीं देखा था। किसी के भी मुख से कोई शब्द नहीं निकला। सब नीचे सर किये अपने-अपने कार्य में लगे रहे। हैड मुनीमजी को अपने अहंकार की भूल महसूस हो रही थी। उन्होंने तुरन्त खड़े होकर सेठजी से क्षमा-याचना की—"क्षमा करें सेठ साहब, मेरी गलती हो गई। आगे से ऐसी गुस्ताखी नहीं करूंगा। आप मुझे नौकरी से नहीं निकालें। मेरे बाल-बच्चे भूखों मर जाएंगे। सेठ साहब, दया करें....।" कहते हुए मुनीमजी ने सेठजी के पांव पकड़ लिये।

सेठजी ने अपने पांव छुड़ाते हुए मुनीमजी को खड़ा किया और मधुर शब्दों में कहा "अरे, आप कहां पहुंच गये। मैंने नौकरी से निकालने की बात ही कहां

की है ? चाबियां तो इसलिये मांग रहा हूं कि रुपये की व्यवस्था आप न करें, तो मैं ही करलूं। आप मेरे विश्वासपात्र व्यक्ति हैं। फिर वर्षों से सेवा कर रहे हैं। इस छोटी-सी बात पर आपको नौकरी से थोड़े ही निकाला जा सकता है। आपको जीवन-पर्यन्त इस फर्म की सेवा करनी है। यह तो आपने भाषा का कुछ विवेक नहीं रखा, इसलिये मुझे कुछ जोश में कहना पड़ा·····। अच्छा लाइये चाबियां दीजिये। मैं रुपयों का प्रबन्ध कर भिजवा दूं।"

"नहीं सेठ साहब, मैं सारी व्यवस्था कर लूंगा। आप निश्चिन्त रहें। आज ही पचास हजार रुपये मणिपुर भिजवा दूंगा।" मुनीमजी ने विनम्र शब्दों में कहा।

'ठीक है, आप भिजवादें।" कहकर सेठजी चले गये।

मुनीमजी ने पचास हजार रुपये मणिपुर भिजवा दिये। गुणचन्द्र के पास रुपये पहुंचे, तब तक वहां की पूंजी भी समाप्ति पर थी। व्यापार जमने में कुछ समय लग रहा था। इसी चिन्ता में गुणचन्द्र खोया रहता कि काम कुछ लम्बा छेड़ दिया है और पूंजी कम पड़ रही है। इतने में पचास हजार रुपये पहुंच गये। गुणचन्द्र को प्रसन्नता का पार न रहा। एक बार फिर उसका मन

सेठजी के प्रति श्रद्धा एवं कृतज्ञता से भर गया। मन ही मन उसका सिर सेठजी की महानता के प्रति श्रवनत हो गया।

—४—

पर्याप्त धन आ जाने से उसे व्यापार में अच्छी सुविधा मिल गयी। अन्य व्यापारियों के साथ मिलनसारिता के व्यवहार से एवं अर्थ की व्यवस्था से उसका व्यापार अच्छा चलने लगा। अपने नियम-पालन से अधिक की आय होने लगी। ज्यों-ज्यों आय बढ़ती गई, त्यों-त्यों वह व्यापार को भी विस्तृत करता गया। गुणचन्द्र की निष्ठा के कारण कुछ ही दिनों में उसके व्यापारिक प्रतिष्ठान की प्रतिष्ठा मणिपुर में ही नहीं, पूरे पांचाल प्रदेश में फैल गई।

इतना होते हुए भी उसके मानस में बार-बार यही विचार उठता रहता कि इस छोटे-से व्यापार से मैं सेठजी को कोई बड़ी उपलब्धि नहीं करा सकता हूं। सेठजी ने मुझ पर जो निष्कारण और बिना परिचय के कृपा की है, मेरे द्वारा उन्हें उसी अनुपात से प्रतिफल मिलना चाहिये। गुणचन्द्र अनेक बार यह भी सोचता कि सेठजी का दिल जितना उदार और महान् है, उस अनुपात से उनकी पुण्यवानी भी तेज होनी चाहिये।

इसी उधेड़ बुन में खोए-खोए गुणचन्द एक दिन जल-कुण्ड पर स्नान करने गया। सेठजी के उपकार के चिन्तन में वह अत्यधिक भावुक हो रहा था। सहसा उसके मानस में क्या विचार उठा कि उसने इस संकल्प के साथ कुण्ड में डुबकी लगाई कि सेठजी के भाग्य में जो भी हो, मेरे हाथ म आ जाए। उसका मन उस समय अत्यन्त श्रद्धाविल एव भावावेष्ठित था। उसके हाथ में कुण्ड में पड़ा हुआ लगभग एक फुट चौड़ा तीन फुट लम्बा शिला-खण्ड (पत्थर-पट्टी का टुकड़ा) आ गया। थोड़ी ताकत लगाकर उसने उसे बाहर निकाल लिया और दुकान पर ले आया। मार्ग भर उसे विचार आता रहा। अवश्य ही इस पत्थर में कोई रहस्य है। इसीलिये यह पानी में एकदम खुला पड़ा था। अन्यथा किसी फर्श या दीवार में जड़ा होता। कुछ भी हो, मुझे यह सेठजी के भाग्य के रूप में प्राप्त हुआ है, अतः इसे सेठजी के यहां भिजवा देना चाहिये।

दुकान पर आकर उसने उस शिला के ऊपर कपड़े का एक पूरा थान लपेट लिया। उसके ऊपर मखमल का कपड़ा और फिर अच्छा पेकिंग करके उसे सेठजी के यहां भिजवा दिया।

वह वजनदार बण्डल जब मुनीमजी के हाथों आया, तो वे सोचने लगे—अवश्य ही नये मुनीमजी ने कोई साने

की सिलियां भेजी होगी । किन्तु जब उसे खोला गया, तो मखमल और टूल (एक प्रकार का लाल कपड़ा) के थान में लपेटी हुई शिला निकली सभी कर्मचारी आश्चर्यचकित थे इस पत्थर को इतने बड़े एवं मंहगे कपड़े में लपेट कर भेजने का क्या उद्देश्य हो सकता है! मुनीमजी ने सेठ साहब को निवेदन किया कि "मणिपुर के नए मुनीमजी ने यह पत्थर भेजा है । इसका क्या किया जाय ।"

पत्थर देख कर क्षण भर तो सेठजी भी असमंजस में पड़ गए । फिर सम्भलते हुए बोले—"ठीक है, उन्होंने कुछ विचार करके ही भिजवाया होगा । आप ऐसा करें, वह जो ऊपर जाने की सीढ़िया हैं, वहीं रख दें । वैसे भी वह पहली सीढ़ी कुछ ऊंची पड़ती है । समय पर मुनीम-जी से जानकारी कर लेंगे कि उन्होंने यह पत्थर यहां क्यों भिजवाया है ।"

सेठजी के निर्देशानुसार मुनीमजी ने यह पत्थर प्रथम सीढ़ी के नीचे रख दिया । सयोगतः वह पत्थर वहां व्यवस्थित रूप से फिट हो गया और प्रथम सीढ़ी की ऊंचाई भी अन्य सीढ़ियों के समान बन गई ।

इधर गुणचन्द्र का व्यापार व्यवस्थित गति से चलता रहा और आय-वृद्धि के साथ–साथ प्रतिष्ठा भी बढ़ता

बढ़ती रही। अधिक लाभ होने पर भी वह अपनी दान की सीमा एवं धार्मिक उपासना, आदि में यथावत् ही चलता रहा। न तो उसने दान की राशि में वृद्धि की और न अपने व्यक्तिगत खर्च में। क्योंकि जो वेतन उसने निश्चित किया था, उससे अधिक पैसा उठाना वह अनैतिकता समझता था। उसकी धार्मिक उपासना (सामायिक आदि क्रिया) भी सुदृढ़ आस्था के साथ चलती रही।

इस प्रकार कुछ ही महीनों में उसने सेठजी का नाम चारों तरफ फैला दिया और अच्छा द्रव्य एकत्रित करता रहा। वह इसी विचार में था कि एक अच्छी राशि इकट्ठी हो जाए, तभी सेठजी को भेजूं। तब तक व्यापार का विस्तार करता रहूं।

इधर व्यापार के विस्तार से सेठजी की प्रतिष्ठा पूरे पांचाल प्रदेश में फैल रही थी, तो इधर दो सौ रुपये प्रतिदिन दान से गुणचन्द्र की एवं सेठजी की कीर्ति दिग्दिगन्त को छूने लगी। हजारों याचक मणिपुर की ओर बढ़ने लगे। ज्यों-ज्यों कीर्ति फैलती, त्यों-त्यों याचकों की संख्या बढ़ती जाती। इस बढ़ती हुई संख्या को देखकर गुणचन्द्र ने समुचित दान की निश्चित समय की व्यवस्था बना दी, ताकि उचित पात्र को उचित समय पर समुचित वस्तु प्राप्त हो सके।

व्यापार-विस्तार एवं कीर्ति-विस्तार के इसी दौर में एक दिन पुण्य प्रभा की चमत्कारिक घटना घटित हो गई। हुआ यों कि अपने दान के दैनिक क्रम के अनुसार प्रातः दो सौ रुपये लेकर गुणचन्द्र शहर के बाहर की वस्ती में निकल गया। यथोचित दान करके कुछ घूमने की दृष्टि से शहर के बाहर बहती नदी के किनारे चला गया। वहां उसने कुछ मतीरे की फसल देखी तो मतीरा खाने की इच्छा जागृत हो गई। उसने माली से कहा— "भाई, एक मतीरा दे दो।" माली इस महान् दानी युवक को अच्छी तरह पहचानता था। तुरन्त गया और एक बड़ा-सा मीठा मतीरा तोड़ लाया। गुणचन्द्र पैसे देने लगा, तो माली ने साफ इन्कार कर दिया।

गुणचन्द्र जेब से चाकू निकाल कर वहीं नदी किनारे मतीरा चीरने को बैठ गया। मतीरा चीरते हुए सहसा उसके हाथ से चाकू पानी में गिर गया। उसने चाकू बाहर निकाला तो चाकू देखकर उसके आश्चर्य का पार न रहा। जो चाकू लोहे का था, वह सोने का बन गया था। उसने सोचा निश्चित ही यहां कोई पारस पत्थर होना चाहिये। जहां चाकू गिरा था वहां के सब पत्थर उठाकर उसने अपनी चाबियों से उनका स्पर्श करवाया। एक पत्थर से चाबी सोने की बन गई। बस अब क्या था! उसने अन्य पत्थरों को वहीं डाल दिया

उस पारस पत्थर को जेब में रखकर इत्मीनान से मतीरा खाया ।

अब गुणचन्द्र के पास किस बात की कमी थी ? अब तो वह चाहे जितना सोना बनावे और मुक्तहस्त से हजारों का दान करे, तो भी उसे कोई रोकने वाला नहीं था। फिर भी उसने व्यवसाय-कार्य में कोई कटौती नहीं की । वह अच्छी तरह समझता था कि काम–धन्धा छोड़ने से मैं अकर्मण्य हो जाऊंगा और साथ ही परिश्रम का पैसा एक अलग ही आनन्द देता है । अतः उसने व्यवसाय यथावत् चालू रखा । किन्तु सेठजी को अधिकतम लाभ हो, इस दृष्टि से उसने प्रतिष्ठानपुर समाचार दिये कि यहां पचास मन लोहे की आवश्यकता है । अतः आप तुरन्तु पचास मन लोहा भिजवाने का कष्ट करें ।

समाचार मुनीमजी को मिले । मुनीमजी सोचने लगे–बाबूजी सेठजी का दिवाला निकाल कर ही छोड़ेंगे । सोचा होगा अब सेठजी पैसा नहीं भेजेंगे, तो चलो माल ही मंगवाकर उड़ाते रहो । फिर भी अपने कर्त्तव्य की दृष्टि से मुनीमजी ने पत्र सेठजी को दे दिया । सेठजी ने कहा—"ठीक है । व्यापार में कहीं लोहे का सौदा किया होगा । आप आज ही पचास मन लोहा भिजवाने की व्यवस्था कर दें ।

मुनीमजी ने अनमने भाव से स्वीकृति सूचक सिर हिलाया।

पचास गधों पर पचास मन लोहा मणिपुर पहुंचा। गधा लाने वाले व्यक्ति को अन्दर भोजन पर बिठाकर इधर गुणचन्द्र ने कुछ ऊपर के लोहे को छोड़ कर शेष लोहे पर पारस फिरा दिया और ऊपर से बोरों की यथावत् सिलाई करा दी। फिर गधे वालों से कहा,—"देखो, अब तुम यहां से खाली गधे लेकर जाओगे। इससे अच्छा है कि मैं तुम्हें दुगना किराया दे देता हूं। यह माल वापस ले जाना और सेठजी को समझा देना।"

गधे वालों ने प्रसन्नतापूर्वक हां भरली और वह माल लेकर पुनः प्रतिष्ठानपुर चले आये। सेठजी ने कहा—"मुनीमजी, लोहा तो वापस आ गया है। चलो पीछे बाड़े में थप्पी लगवा दो।"

सेठजी के निर्देशानुसार मुनीमजी ने ज्यों के त्यों बाड़े में बन्द बोरों की थप्पी लगवा दी।

इधर गुणचन्द्र अपने कार्य में व्यवस्थित चला जा रहा था, तो उधर एक दिन सेठ भागचन्दजी के एक निकट के रिश्तेदार, जो व्यवसाय से जौहरी थे, प्रतिष्ठानपुर सेठजी के यहां आए हुए थे। जौहरी जी के ऊपर जाने के लिए ज्यों ही उस पत्थर पर, जिसे गुणचन्द्र

ने भेजा था, पैर रखा कि चौंक पड़े। सेठ भागचन्दजी चौंकने का कारण जानने हेतु इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने लगे कि कहीं कोई बिच्छू-सर्प, आदि जीव तो नहीं है। जब उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं दिया, तो जोहरीजी से पूछा—"क्या बात है? आप चौंक क्यों पड़े? कोई जहरीला जन्तु है क्या?

जोहरीजी ने कुछ सहज होते हुए कहा - "नहीं ऐसी कोई बात नहीं है। जीव वगैरह कोई नहीं है। मैं तो इस पत्थर को देखकर ही चौंका हू। क्या यह पत्थर आप बेच सकते हैं?"

सेठ भागचन्दजी की जिज्ञासा बढ़ी। उन्होंने पूछा, "क्यों इस पत्थर में ऐसी क्या विशेषता है? मैं इसके विषय में कुछ नहीं जानता हूं। हमारे एक नए मुनीमजी हैं—बड़े पुण्यवान एवं निष्ठावान, उन्होंने ही यह पत्थर मणिपुर से भिजवाया है। हमने इसे सामान्य पत्थर समझकर यहीं रख दिया।"

जोहरी जी कहने लगे—"आपकी दृष्टि वहां तक नहीं पहुच सकती है। कोई जोहरी ही इस पत्थर की कीमत आंक सकता है। आप पांच लाख तक में यह पत्थर देना चाहें तो मैं खरीद सकता हूं।"

सेठजी का आश्चर्य एवं विस्मय बढ़ गया। वे पूछने लगे—"देखिये, बेचने की बात तो मैं नहीं करता हूं,

क्योंकि नये मुनीमजी ने किस अभिप्राय से भेजा है: यह वे ही जानते हैं। किन्तु आप मुझे इसके रहस्य से तो अवगत करादें कि आखिर इस पत्थर में ऐसी क्या विशेषता है ?"

जौहरी जी ने कहा—"सेठ साहब, इस पत्थर के चारों कोनों में पत्थर की हल्की सी झिल्ली के नीचे चार सवा-सवा लाख के हीरे लगे हैं। इनके अतिरिक्त एक हीरा बीच में लगा है, जिसकी कीमत मैं नहीं बता सकता। मेरी दृष्टि में वह हीरा इन चारों की कीमत से भी कई गुना अधिक का है।"

जब सेठजी ने यह बात सुनी, तो तुरन्त कुछ दूर बैठे हैड मुनीमजी को आवाज दी। मुनीमजी तुरन्त सेठजी के पास आ खड़े हुए। सेठजी ने कहा—"बताइये तो वे नये मुनीमजी कितना रुपया ले गए हैं ?"

मुनीमजी ने बड़े संकोच भरे शब्दों में सहमते हुए कहा—"लाख-सवा लाख रुपये तो उठाये ही होंगे। पचास हजार तो यहां से जाते समय ले गए थे और पचास हजार पीछे से और मंगवाए। २०-२५ हजार यहां रहते हुए खर्च किए होंगे।"

"बस इतने ही खर्च किये ! आपको ज्ञात है यह पत्थर किसने भेजा था ? नए मुनीमजी ने ही ना ? इस

त्थर के ये जौहरी जी पांच लाख तो देने को तैयार हैं
ौर इसकी कीमत दस लाख से भी अधिक बता रहे हैं।
ताइये नए मुनीमजी ने मेरी सम्पत्ति उड़ाई है कि दस
णी बढ़ाकर भेजी है ? जो पचास हजार वे ले गए,
नसे भी आखिर वहां व्यापार का विस्तार ही तो किया
ागा ? उनके दो सौ रुपए प्रतिदिन के आपको अखर
हे हैं। किन्तु उनकी पुण्य प्रभा को आप नहीं
मझते........। उठाओ इस पत्थर को और अन्दर उस
ी तिजोरी के पास रक्खो। [अब जब ज्ञात हो गया
ा पत्थर कीमती है, तो उसे यों बाहर कैसे रक्खा जा
कता है।] मैं आकर तिजोरी में रख दूंगा।" सेठजी
कुछ गर्व के साथ कहा और जौहरी जी को साथ ले
ापर चले गए।

मुनीमजी यह सब सुनकर हक्के-बक्के रह गए।
नकी आंख फटी की फटी रह गई। वे एकटक उस
त्थर को देखते रहे। उन्हें यह सब बड़ा भारी चमत्कार-
ा लग रहा था। कुछ क्षणों में स्वस्थ होकर उन्होंने
ह पत्थर उठाया और अन्दर तिजोरी के पास रख
दया।

अन्य सब कर्मचारियों में भी कानों-कान यह खबर
ल गई कि नए मुनीमजी ने एक साथ सेठजी को दस-
ारह लाख की आय करवा दी है। सभी के मन में

सहज ही अपने पूर्व कृत्यों पर पश्चात्ताप होने लगा। गुणचन्द्र की पुण्य-प्रभा के प्रति श्रद्धा उमड़ पड़ी।

सेठजी भोजन, आदि से निवृत्त हो नीचे आए। पत्थर को बड़ी तिजोरी में व्यवस्थित किया। सेठजी को गुणचन्द्र की याद आने लगी, साथ ही उन्होंने यह देखा कि सभी कर्मचारी और स्वयं मुनीमजी के हृदय में भी नए मुनीमजी के प्रति स आदर एवं श्रद्धा के भाव उमड़ रहे हैं, तो उन्होंने गु चन्द्र को पत्र द्वारा सूचना कर दी कि अब आप वहा कार्य किसी विश्वस्त व्यक्ति को सम्भलाकर यहां जाएं।

पत्र प्राप्त होते ही गुणचन्द्र ने एक अत्यन्त विश व्यक्ति को व्यापार का सम्पूर्ण दायित्व सौंप दिया स्वयं प्रतिष्ठानपुर जाने की तैयारी में जुट गया।

उसे यह अहंकार छू तक नहीं गया कि अब तो पास पारस पत्थर है, अब सेठजी की कोई गरज नहीं उनके आदेश का पालन क्यों करे या वे उस पर क्या आदेश चला सकेंगे! विपरीत, वह तो सेठ उपकार को स्मरण कर-करके श्रद्धा से भरा जाता वह अच्छी तरह समझ रहा था कि उसे जो कुछ हुई है, वह सेठजी की कृपा का ही परिणाम है।

जी मुझे इतने भारी वेतन पर नहीं रखते, तो क्या मैं ज इस स्थिति तक पहुंच पाता ? सेठजी की महानता य है। उन्होंने विना जान-पहिचान के इतनी उदारता परिचय दिया । मैं इस जीवन में सेठजी के उपकार ऋण नहीं चुका सकता । मेरा तो अब एक ही कर्त्तव्य कि सेठजी के प्रत्येक इशारे को धर्म-शास्त्र मानकर का यथावत् पालन करूं । यह जो पारस पत्थर है, भी सेठजी की उदारता एवं पुण्यवानी का ही परि-म है। अतः इस पर भी मेरा कोई अधिकार नहीं है । है इसे भी सेठजी को सौंप देना है । मेरा तो अधिकार सो रुपये प्रतिदिन पर ही है। इसके ऊपर सेठजी जो भी दे दें, उनकी उदारता एवं महानता ही है ।

इस प्रकार सेठजी की उदारता एवं महानता का -ही-मन स्मरण करते हुए गुणचन्द्र ने प्रतिष्ठानपुर की तैयारी करली । नगर-सम्राट से भेंट कर आज्ञा त करली और परिचित नगर प्रमुखों से भी मिलकर पुर से प्रस्थान कर दिया । अपने हाथों से कमाया लाखों का द्रव्य एवं पारस पत्थर उसके साथ था । सुरक्षा हेतु उसने कुछ कर्मठ कर्मवीर शक्तिशाली कियों एवं अन्य नौकरों को भी साथ ले लिया था ।

मार्ग भर दान की सुवास फैलाता हुआ और हजारों -हीन व्यक्तियों के शुभाशीर्वाद प्राप्त करता हुआ

गुणचन्द्र प्रतिष्ठानपुर पहुंच गया। गुणचन्द्र के आग
के समाचार सेठजी को एवं नगरजनों को प्राप्त हो
थे। उसकी कीर्ति पताका वहां पहले ही फहरा चुकी
अतः अनेक गणमान्य सज्जन एवं अपने समस्त क
चारियों के साथ स्वयं सेठ भागचन्दजी स्वागत हेतु न
के बाहर तक गए।

स्वयं अपने मालिक सेठ भागचन्द को स्वागत
आये देख गुणचन्द्र विस्मित तो था ही साथ ही न
एवं कृतज्ञता से उसका हृदय भरा जा रहा था। से
कुछ निकट आ गए, तो गुणचन्द्र कुछ तेज कदमों
चलकर उनके चरणों में झुक गया। सेठजी ने उसे
कर गले से लगाया। फिर सभी आगत सज्जनों
प्रणाम करता हुआ वह सब के साथ दुकान पर
आया। हैड मुनीमजी, आदि सभी उसके पुण्य प्र
एवं तेजस्विता को देखकर अवनत थे, तो अपनी
ईर्ष्या पर शर्मिन्दा भी। गुणचन्द्र ने उन्हें एवं अन्य
कर्मचारियों को भी प्रणाम किया और उचित स
दिया।

सभी आगत सज्जनों के उचित सत्कार से
होकर गुणचन्द्र ऊपर माताजी/सेठानीजी के पास
भाव-विभोर हो प्रणत हो गया। सेठानीजी ने
वरद हस्त उसके सिर पर रखा और उसको
अपने अंक में छिपा लिया।

इस प्रकार भोजन आदि से निवृत्त होकर व्यापार आदि के सम्बन्ध में चर्चा हेतु सेठजी एवं गुणचन्द्र गद्दी पर बैठ गए। सर्वप्रथम सेठजी ने प्रसंग छेड़ा—"आपने जो वह शिला-पत्थर भेजा था, उसके विषय में कुछ संकेत-सूचना भी नहीं लिखी कि वह पत्थर इतना कीमती है। मैंने तो उसे सीढ़ियों के पास साधारण पत्थर समझ कर रखवा दिया था। यह तो एक दिन अपने सम्बन्धी जौहरी जी आ गए। उन्होंने उसे देखा, तो वे चौंक पड़े और उसकी कीमत दस लाख से भी अधिक बताई।"

गुणचन्द्र ने शान्त एवं गम्भीर स्वर में कहा "सेठ साहब, जबकि मैं स्वयं ही इसकी कीमत नहीं जानता तो आपको कैसे सूचित करता कि इसकी कीमत दस लाख से भी अधिक है? असल में आपके उपकार भार से मेरा मन दबा जा रहा था। मैं रात-दिन इसी चिन्ता में रहता था कि आपके इस उपकार का बदला कैसे चुकाऊंगा? इसी चिन्ता में एक दिन मैं स्नान करने गया और आपके नाम से कुण्ड में डुबकी लगाई कि सेठ साहब के भाग्य में जो हो, मेरे हाथ में आये। मेरे हाथ में यह शिला आ गई और मैंने यहां भिजवा दी। यह जो कुछ है, वह आपकी पुण्यवानी का फल है।"

सेठजी गुणचन्द्र की श्रद्धाविल भावना को देखकर गद्गद् हो गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे यह युवक

कितना सरल एवं सहज है। अपनी महानता को छिपा-कर मेरी ही महानता को प्रदर्शित करता रहता है।

इसी चर्चा के दौरान मणिपुर की दुकान की सम्पूर्ण स्थिति बताते हुए गुणचन्द्र ने सेठजी से पूछा—"सेठ साहब, वह जो लोहा मैंने वापस भिजवाया था उसको आपने सम्भाल लिया कि नहीं ?"

सेठजी ने सहज रूप से कह दिया—"उसका क्या सम्भालना ? ज्यों-के-त्यों बन्द बोरों को बाहर बाड़े में डलवा दिया था।"

गुणचन्द्र ने कुछ विस्मय भाव से कहा—'क्या आपने उन्हें खोल कर देखा भी नहीं ! चलिये मुझे बताइये तो, कहां रखें हैं वे बोरे ?"

"गुणचन्द्र के बात करने के विस्मयोत्पादक ढंग को देखकर सेठजी कुछ आश्चर्यान्वित से होते हुए गुणचन्द्र के संकेतानुसार उठ खड़े हुए। दोनों दुकान के पिछले हिस्से में बने बाड़े में पहुंचे। सेठजी ने बोरियों की थप्पी ओर इशारा करते हुए कहा—"वे रखी हैं सब ।"

गुणचन्द्र बोरियों के निकट गया और एक बोरी की सिलाई तोड़कर सेठजी को भीतर दृष्टि डालने का इशारा किया। सेठजी ने देखा तो आंखे फटी-की-फटी रह गई।

बड़े आश्चर्य के साथ पूछा—"यह क्या ? आपने उस लोहे के बजाय वहां से सोना भेजा था ? कम-से-कम पत्र में संकेत तो करना था कि माल को सम्भाल लें। मैंने तो सोचा लोहा ही वापस आ गया होगा । और यहां थप्पी लगवा दी। किन्तु आपने इतना पैसा कमा कैसे लिया ? यह मेरी समझ मे नहीं आ रहा है कि इतने थोड़ समय में आपने इतना द्रव्य कहां से कमा लिया और यह लाखों का माल ले आए ?"

गुणचन्द्र खड़ा-खड़ा मुस्कराता रहा। सेठजी ने उधर ध्यान हटाकर हेड मुनीमजी को आवाज दी "मुनीमजी, जरा इधर आना तो........।"

सेठजी की आवाज सुनकर मुनीमजी दौड़े आए। सेठजी ने कहा—'जरा इन बोरियों के टाके तोड़ कर देखो तो भीतर क्या है ?"

मुनीमजी ने एक दो बोरियों के टांके खोल कर देखा तो फटी-फटी आंखों से देखते ही रह गए। उनके मुंह से कोई शब्द ही नहीं निकल सका।

सेठजी ने व्यंग्यपूर्ण, किन्तु गम्भीर शब्दों में कहा—"उठाओ इन्हें और अन्दर कोठार में रक्खो। न तुमने खोलकर देखा, और न मैंने। इतना सोना इतने दिन इस तरह बाहर खुले में ही पड़ा रहा।"

मुनीमजी कुछ-कुछ शर्म महसूस करते हुए कहने लगे—"सेठ साहब, इस सोने को तो आप सड़क पर बिखेर दें, तो भी कोई नहीं ले जा सकता है। नये मुनीम जी की पुण्यवानी इतनी गजब की है कि थोड़े दिनों में ही उसने चमत्कारी करके दिखा दिया। सेठ साहब, हमने अपनी क्षुद्र बुद्धि का ही परिचय दिया था, किन्तु आपकी महानता ने भी गजब की परख की।"

सेठजी ने बात को बीच में ही रोकते हुए कहा—"खैर, छोड़ो इस चर्चा को। आप तो इन बोरों को उठा कर अन्दर कोठार में जमाने की व्यवस्था करें।"

सेठजी एवं हैड मुनीम की इस चर्चा के समय ही गुणचन्द्र ने धीरे से बोरों को देखने-टटोलने के बहाने कुछ इधर-उधर करके जो कुछ ऊपर-ऊपर लोहा था उसे भी पारस पत्थर के प्रभाव से सोना बना दिया।

मुनीमजी को कार्य सौंप कर सेठजी एवं गुणचन्द्र पुनः दुकान पर आकर गद्दी पर बैठ गए। सेठजी के हृदय में गुणचन्द्र की पुण्य प्रभा अब तक बहुत गहरा स्थान बना चुका था। उन्होंने भाव-विभोर होते हुए ... —"आखिर आपने किस तरीके से इतना धन कमा लिया? इसका राज तो बतावें।"

गुणचन्द्र ने हल्की-सी मुस्कान बिखेरते हुए जेब में पारस पत्थर निकालकर सेठजी के समक्ष रखते हुए कहा—

सेठ साहब, जहां आप जैसे दयालु, उदार चेता महापुरुषों का कृपापूर्ण आशीर्वाद हो, वहां किसी चीज की कमी रह सकती है ? आपकी कृपा से मुझे यह पारस पत्थर मिल गया और मैंने यह सोना बनाकर भिजवा दिया । वैसे लोहे की वहां कोई कमी नहीं थी, किन्तु यहां से लोहा मंगवाने का मुख्य कारण यही था कि उसे वापस भिजवाने में सुविधा रहेगी ।"

पारस पत्थर देखकर तो सेठजी हक्के-बक्के रह गये । उनको तो यह कल्पना भी नहीं थी कि पारस पत्थर भी कभी मिल सकता है । वे तो उसे ग्रन्थों का आलंकारिक विषय ही समझते थे । आज अपनी आंखों पर ही उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था । वे आश्चर्यचकित हो उस पत्थर को ही देखते रह गए । आखिर कुछ स्वस्थ हो उन्होंने गुणचन्द्र को पारस प्राप्ति का कारण पूछा कि यह उसे कैसे प्राप्त हुआ है ?

गुणचन्द्र ने मतीरा खाने और चाकू का पानी में गिर जाने की अथ से इति तक की पूरी कहानी सुना दी । पारस पत्थर मिलने की कहानी सुनकर सेठजी का हृदय गद्गद् हो गया । अब तो सेठजी का गुणचन्द्र पर कृपा का नहीं श्रद्धा का भाव बन गया । भावावेश में उन्होंने गुणचन्द्र को अपने सीने से लगा लिया । मन-ही-मन उसकी पुण्य प्रभा की तेजस्विता एवं त्याग-पालन की साधना के पुरुषार्थ को लाख-लाख धन्यवाद देने लगे ।

गुणचन्द्र की पुण्य प्रभा एवं गुणप्रभा का स्मरण करते करते सेठजी एकदम भावविभोर हो रहे थे कि उनके चिन्तन ने सहसा करवट ली। सहसा उनका ध्यान अपनी इकलौती प्रिय पुत्री गुणमाला पर चला गया। कुछ क्षण वे गुणमाला के सम्बन्ध में सोचते रहे। फिर कुछ गम्भीर से होते हुए कहा—"आपके पुण्य प्रभाव से मैं ही क्या पूरा शहर और जनपद ही कृतकृत्य हो रहा है। आप जैसे पुण्यशाली व्यक्ति का सान्निध्य प्राप्त कर मैं अपने आपको धन्य अनुभव कर रहा हूं। मुझे लग रहा है कि किसी पूर्व पुण्य के उदय से ही मुझे आप जैसी पुण्यात्मा का सुयोग मिला है। अब आप इस घर-परिवार को अपना ही समझें एवं जितना चाहें, उतना दान करें। वैसे भी अब आपको न किसी बात की कमी है और न मेरे आश्रय की आवश्यकता है। दुनिया का श्रेष्ठतम आर्थिक स्रोत पारस पत्थर आपके पास है।"

"…………नहीं सेठ साहब, आप ऐसा न कहें। मैं आपके आश्रय तले ही जी रहा हूं और उसी पुनीत आश्रय तले रहना चाहता हूं। रहा पारस पत्थर का सवाल, सो यह आपकी पुनीत छाया से मुझे वञ्चित करने में निमित्त नहीं बन सकता है। प्रथम तो आपकी नौकरी करते हुए जो कुछ, आय प्राप्ति हो उस पर आपका ही अधिकार होगा। मैं तो केवल दो सौ रुपये दैनिक का अधिकारी हूं। दूसरी बात कि पारस पत्थर ऐसी कोई चीज नहीं

है, जिसके सामने आपके उपकार को भुलाया जा सके। वह है तो आखिर भौतिक पदार्थ ही। इसके लिये स्वामी-सेवक अथवा पिता-पुत्र के सम्बन्ध को गौण नहीं किया जा सकता है।

"मैं तो अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार दो सौ रुपये प्रतिदिन लूंगा और दान करूंगा। बाकी यह पारस पत्थर आदि सभी कुछ आपका है। आप इस छोटी-सी चीज को महत्त्व देकर आन्तरिक स्नेह भाव में व्यवधान न डालें।" कहते हुए गुणचन्द्र कुछ भावुक-सा हो गया।

सेठजी ने अत्यन्त भावपूर्ण स्नेह भरा हाथ गुणचन्द्र पर फिराया और कहने लगे—"इतने भावुक न बनो बेटा, मैं इस पारस पत्थर के लिये इतना निष्ठुर नहीं बन सकता कि तुम्हारे प्रति बनी आत्म-प्रीति को ओझल कर दूं। तुम्हारी पुण्यशीलता के सामने यह पारस पत्थर क्या कीमत रखता है? ऐसे अनेकों पत्थर तुम्हारे चरणों में लुढ़कते रहेंगे।"

"आप रक्खें-आप रक्खें" के सामान्य से विवाद के बाद पारस पत्थर सेठजी ने रख लिया। गुणचन्द्र मणिपुर से आये हुए माल-असबाब और कर्मचारियों की व्यवस्था में लग गया और सेठजी सीधे ऊपर अपने निजी बैठक-कक्ष में चले गये। उनके मानस में एक योजना निश्चय का रूप ले चुकी थी। उसी के क्रियान्वयन के

लिये वे सेठानी से विचार-विमर्श करने ऊपर आये थे। अतः उन्होंने आवाज देकर अपने कक्ष में ही सेठानी को बुलवा लिया सेठानी गृह-कार्य से निवृत्त हो गुणमाला से धर्म-चर्चा करने बैठी थी। यह उसका दैनिक क्रम ही था। जब कभी अपने कार्यों में अवकाश मिलता, वे अपनी पुत्री में धर्म-संस्कार डालने का प्रयास करतीं। सेठजी की आवाज सुनते ही गुणमाला को वहीं छोड़ सेठानी, सेठजी के कक्ष में पहुंच गई।

सेठजी ने प्रसन्न भाव से सेठानी को सामने बैठने का इशारा करते हुए गम्भीर भाव से कहा—"मैं आज तुम से एक विशेष विचार-विमर्श करने आया हूं।"

"फरमाइये ना, क्या आदेश है? वैसे आप जो कुछ करते हैं, अच्छा ही करते हैं। इसमें मुझसे परामर्श करने की क्या बात है?" सेठानी ने नम्रता व्यक्त की।

"तुम्हारा कहना ठीक है। किन्तु आज एक विशेष प्रसंग में तुम्हारी राय लेना चाहता हूं। तुम्हें मालूम है कि अपने नये मुनीमजी, जो मणिपुर का काम देखते थे उन्हें वापस बुलवा लिया है। वे आज ही आये हैं।"

"हां, अभी-अभी तो मैंने अपने हाथों से खिलाकर भोजन करवाया है। पर आप उन्हें मुनीमजी क्यों कहते हैं? मुझे तो वे अपने बेटे जैसे ही लगते हैं।"

"हां वही तो मैं भी कहने जा रहा हूं ।"

"क्या आप उन्हें गोद (दत्तक) रखना चाह रहे हैं ?" सेठानी ने बीच में ही बात काटकर पूछा ।

"दत्तक तो नहीं, पर हां वैसा ही समझलो । देखो अपनी बेटी अब कुछ सयानी हो गई है । उसका विवाह तो हमें करना ही है और इसके अतिरिक्त अपने और कोई सन्तान है नहीं । मैं सोचता हूं कि गुणचन्द्रजी से बढ़कर भाग्यशाली लड़का कहीं नहीं मिलेगा । इसकी पुण्यवानी कितनी प्रबल है, यह तुम्हें मालूम नहीं है । दो सौ रु० रोज दान देने के आग्रह से इन्होंने घर छोड़ दिया और मैंने इन्हें केवल इनके चेहरे की आकर्षकता एवं पुण्यशालिता को देखकर इच्छानुसार वेतन पर रख लिया । ये यहां दो सौ रुपये प्रतिदिन दान देते थे । पुराने मुनीमजी ईर्ष्या करने लगे, तो मैंने इन्हें सभी सुविधाएं देकर मणिपुर भेज दिया । वहां से इन्होंने थोड़े से दिनों में दस-पन्द्रह लाख की कमाई दे दी । यही नहीं, अब इस पुण्यशाली को पारस पत्थर भी मिल गया और वह भी इन्होंने मुझे दे दिया बड़े आग्रह के साथ । मैं नहीं ले रहा था तो कुछ भावुक बन गये । अब तुम्हीं सोचो, इससे बढ़कर पुण्यशाली लड़का कौन मिलेगा गुणमाला के लिये ? हम इन्हें ही अपना कुल दीपक मानकर सारा भार इनको सौंप देंगे और धर्माराधना में लग जाएंगे ।"

सेठजी के विचारों से असहमत होने का तो सवाल ही नहीं था। ये विचार सुनकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने कहा—"यह तो मेरे मन की बात ही आपने कही है। मेरे मन में तो यह जब यहां रहता था, तभी से ... की तरह भा गया था। मैं कई बार सोचती भी थी कि क्या ही अच्छा हो कि इसे हम अपना घर जमाई बनावें, जबकि मुझे इसके बारे में इतनी विस्तृत जानकारी भी नहीं थी। हां, इसका रहन-सहन, सरलता, सादगी ए... खास चारित्रनिष्ठा, दृष्टि की पवित्रता से ही मैं बहुत प्रभावित हो गई थी। निश्चय ही ऐसा निष्ठावान लड़का मिलना मुश्किल है। किन्तु इसके कुल खानदान का भी कुछ पता है कि नहीं?" सेठानी पूर्ण सहमति के साथ छोटी सी जिज्ञासा भी रखदी।

वैसे मैंने उनसे जाति कुल आदि के विषय में कभी नहीं पूछा, किन्तु उनके जीवन व्यवहार से यह सा... लगता है कि यह बहुत कुलीन है। बिना खानदान ... कुलीनता के दो सौ रुपये प्रतिदिन दान की प्रतिज्ञा ... नहीं हो सकती है। फिर इनका तो पूरा जीवन आ... सामने हैं। पुण्यवानी एवं कुलीनता तो उनका जीव... बता रहा है।

"फिर अब देरी किस बात की। आप तो यह सम्बन्ध अभी आज ही निश्चित करलें।"

सेठानी की सहमति प्राप्त कर सेठजी प्रसन्नवदन नीचे दुकान पर चले गये। दिनभर व्यापार आदि का कार्य देखते रहे। गुणचन्द्र भी अपनी यहां की नई व्यवस्था में लीन रहा।

सन्ध्या को दुकान के कार्यों से निवृत्त हो सेठजी ऊपर जाने लगे, तो गुणचन्द्र को भी ऊपर बुला लिया। अपने बैठक कक्ष में जाकर दोनों उचित आसन पर बैठ गये। सेठजी ने ही बात कर सूत्र पकड़ते हुए कहा—"उधर मणिपुर के व्यापार की सारी स्थिति तो आपने बता दी, किन्तु यह तो आपने बताया ही नहीं कि वहां नया व्यापार जमाने में आपको कोई परेशानी तो नहीं हुई। आप पर कोई कष्ट तो नहीं आया।....अपने पैसों एवं लाभ की चर्चा के भुलावे में आपके दुःख दर्द के विषय में मैंने पूछा ही नहीं।"

"आपके आशीर्वाद से वहां मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। जाते ही मैंने पहले वहां के राजा को कुछ भेंट देकर प्रसन्न कर लिया और उन्हीं के द्वारा आवास आदि की समस्या एवं अन्य व्यापारियों से परिचय कर लिया।

"हां, यदि आप पीछे से पचास हजार रुपये और नहीं भिजवाते तो अवश्य कुछ दिक्कत होती। किन्तु आप तो इतने महान् हैं कि मैं क्या कहूं—मेरे पीछे आपने पानी की तरह पैसा बहाया....।" कहते हुए गुणचन्द्र

कृतज्ञतावश भावुक हो गया। उसकी आंखों से कृतज्ञता की कुछ बून्दें टपक पड़ी।

सेठजी ने बड़े मृदुल स्वरों में कहा—"आप बार-बार ऐसा क्यों कहते हैं? मैंने आपके साथ किया ही क्या है? मैंने तो अपनी आत्म तुष्टि का कार्य किया है। मेरे द्वारा जो कुछ बना, वह तो आपकी पुण्यवानी का ही परिणाम है। आपने नहीं सुना होगा, किन्तु मेरे कानों पर शब्द आ गये हैं कि आपके यहां आते ही सारे बाजार में आपकी चर्चा चल पड़ी है। न जाने किनके द्वारा उस शिला की और पारस पत्थर की चर्चा बाजार में पहुंच गई है। जिन-जिन दुकानों पर आप पहुंचे थे, और जहां से निकाल दिये गये, वे सभी सेठ पश्चात्ताप कर रहे हैं और अपने मुनीमों को आड़े हाथों ले रहे हैं कि उन्होंने ऐसे भाग्यशाली लड़के को अपने यहां नहीं रखकर आगे धकेल दिया। यदि यह हमारे यहां रहता, तो आज हम माला-माल हो जाते····। हमने एक बहुत बड़ा अवसर खो दिया····। इस चिन्तन के अनुसार तो मुझे भी अपने आपको भाग्यशाली मानना चाहिये कि आप जैसे पुण्यशाली व्यक्ति मिले और मेरी कीर्ति एवं लक्ष्मी की वृद्धि होने लगी। उधर आप हो मेरी कृतज्ञता के गीत गाये जा रहे हैं। वास्तविकता तो यह है कि आपका और हमारा यह संयोग किसी पूर्व भव के संस्कार से प्रेरित है। अन्यथा न आप मुझे जानते और न मैं

आपको। जन्म-जन्मान्तर के किन्हीं संस्कारों से ही हमें एक दूसरे से मिल गये हैं।

"अब तो एक बात है कि मैं इस जन्म-जन्मान्तर है। सम्बन्ध को वर्तमान जीवन में भी दृढ़ बना लेना चाहता हूं। यदि आप मेरी बात मान लें, तो कहूं।" सेठजी जिज्ञासा भरी दृष्टि से गुणचन्द्र की ओर देखने लगे।

गुणचन्द्र उनकी आन्तरिक भावनाओं को नहीं समझ सका। उसने कहा—"आप कैसी बात कर रहे हैं। मैंने कभी आपकी कोई बात टाली है? आपकी आज्ञा नहीं मानने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। मैं तो आपका नौकर हूं। और वह भी आपके उपकार के पीछे इतना कृतज्ञ हूं कि आप आग में कूदने की आज्ञा दें, तो भी बिना तर्क किये उसमें कूद पड़ूंगा।........ फरमाइये आपका क्या आदेश है?"

"मुझे भी पूरा विश्वास है कि आप मेरी बात नहीं टालेंगे। फिर भी यह विषय पूरे जीवन से सम्बन्धित है। अतः मैंने आपसे पूछ लिया। अब मेरी यह भावना है कि आप हमारे घर के अनन्य सदस्य बन जाएं। बेटी गुणमाला अब योग्य हो चुकी है, अतः आज से ही वह आपकी हो चुकी है। बस इसी रिश्ते के आधार पर मैं अपने सम्बन्धों को दृढ़ बना लेना चाहता हूं। साथ ही उस प्रिय बेटी के अतिरिक्त मेरे और कोई सन्तान नहीं

है। अतः आपको यहीं रहकर इस घर को भी ...
है। मुझे विश्वास है कि मेरे इस प्रस्ताव को ...
अस्वीकार नहीं करेंगे।"

एकदम अप्रत्याशित बात सुनकर गुणचन्द्र ... गया। कुछ क्षणों तक तो उसकी समझ में ही ... आया कि सेठजी को क्या जवाब दे। वह ... नीची दृष्टि किये बैठा रहा। फिर कुछ स्वस्थ-सा ... होता हुआ बोला—"सेठ साहब, यह तो आपने ... कल्पना के बाहर की बात रखदी है। मैंने अपने ... के इस पक्ष पर कभी कुछ सोचा ही नहीं, और ... सहसा ऐसा प्रस्ताव रख रहे हैं। इसे कैसे स्वीकार ... जाय। दूसरी ओर आपने कभी मेरी जाति-कुल ... खानदान के विषय में भी कोई जानकारी नहीं ली ... एकदम इतना बड़ा प्रस्ताव रख दिया। यह मेरी ... में नहीं आया। इस विषय के निर्णय में आप कुछ ... कर रहे हैं। मेरी दृष्टि से आप इस विषय पर कुछ ... धैर्य एवं गम्भीरता से विचार कर निर्णय लें।" गुण... ने अपनी स्थिति स्पष्ट की।

मैंने खूब अच्छी तरह विचार कर लिया है ... गुणमाला की मां से भी मैंने परामर्श कर लिया ... आपके कुल-गोत्र का जहां तक सवाल है, वह ... पुण्यप्रभा स्पष्ट बता रही है। साथ ही आपने ...

संक्षिप्त परिचय में बताया ही था कि आप एक अच्छे सम्पन्न घराने के सदस्य हैं और एक ही प्रवचन से आपने इतनी बड़ी प्रतिज्ञा करली थी। इस सबसे यह तो निश्चित है कि आप कुलीन हैं। अतः अब आप बचने की कोशिश न करें। आपको मेरा यह प्रस्ताव स्वीकार करना ही पड़ेगा। आप वचनबद्ध हैं कि यदि मैं अग्नि में कूदने को कहूं तो भी कूद जायेंगे। तो फिर मेरा यह प्रस्ताव अस्वीकार कैसे कर सकोगे?"

सेठजी के इस तर्क–संगत आग्रह के सामने गुणचन्द्र कुछ बोलने का साहस नहीं कर सका। उसे 'मौन स्वीकृति लक्षणम्' के रूप में सेठजी की बात स्वीकार करनी पड़ी। फिर भी उसने साहस करके इतना तो कह दिया "आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। किन्तु एक निवेदन है कि विवाह के पश्चात् मैं इस घर का मालिक बनूं और यहीं रहूं, इस अनिवार्यता में आप मुझे न बांधें। मैं तन-मन से आपकी सेवा करूंगा, किन्तु घर जमाई के रूप में रहकर नहीं, आपका सेवक रहकर ही। क्योंकि जिन माता-पिता ने मुझे जन्म दिया, उनका भी मुझ पर उपकार है। वे वृद्धावस्था में मुझे याद करें तो उनकी सेवा का भी मेरा कर्त्तव्य है। और यह मैं अच्छी तरह जानता हूं कि जोश-जोश में उन्होंने मुझे विदा तो कर दिया, किन्तु फिर उन्हें पश्चात्ताप अवश्य रहा होगा। कदाचित् पश्चात्ताप न भी हो तो भी चूंकि

मैं उनकी इकलौती सन्तान हूं, अतः मेरा यह कर्तव्य हो जाता है कि मैं वृद्धावस्था में उनकी सेवा करूं। उन्होंने मुझे इसी स्थिति पर तो निकाला था कि हाथों से कमाकर दान करूं। तो अब मैं वैसी स्थिति में पहुंचकर उनके दर्शन करूं, यही मेरे लिये हितकर है। साथ ही आप उचित समझें, तो विवाह की सूचना भी पिताजी को कर दें।"

सेठजी गुणचन्द्र की दीर्घ दृष्टि पूर्ण कर्तव्यनिष्ठा की भावना से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने गुणचन्द्र की इस बात को स्वीकार कर लिया कि वह भले ही यहां न रहे किन्तु पिताजी को अभी सूचना देने के पक्ष में वे नहीं हैं।

गुणचन्द्र से गुणमाला के साथ विवाह की स्वीकृति लेकर सेठजी सेठानी के कमरे में गये, और उन्हें शुभ समाचार सुनाये दोनों हर्षित थे। शीघ्र ही सब मुनीम कर्मचारियों में और उनके द्वारा नगर में यह शुभ संवाद फैल गया कि सेठ भागचन्द्रजी अपनी कन्या का विवाह गुणचन्द्र के साथ करने जा रहे हैं। गुणचन्द्र की पुण्य कीर्ति के सामने किसी के द्वारा कोई आपत्ति किये जाने का सवाल ही नहीं था।

बड़े धूमधाम से विवाह की तैयारियां होने लगीं। नगर भर में अपनी प्रतिष्ठा के अनुसार सेठजी ने अपार

नवाया । निश्चित समय पर विवाह रस्म पूरी हुई । सेठजी ने एक बहुत सुन्दर भवन गुणचन्द्र के लिये बनवा लिया था । वह भवन तथा लाखों की सम्पत्ति के साथ वह पारस पत्थर भी प्रीति दान-दहेज के रूप में उसे दे दिया । जिस उत्साह और उमंग भरे वातावरण में शादी हुई, उसकी सौरभ सब तरफ फैल गई ।

अब गुणचन्द्र एवं गुणमाला अपने भवन में सानन्द रहने लगे । सेठजी का पूरा कारोबार देखने के साथ अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार प्रतिदिन दान का क्रम चलता रहता है । उसमें भी अब वृद्धि होने लगी । वे बहुत सुखी समृद्ध एवं धर्ममय जीवन जीने लगे । धर्मसाधना के संस्कार दोनों की आत्मा में बहुत गहरे जमे हुए थे । अतः उनके जीवन-व्यवहार में भी धर्म उतरा हुआ था । वे सब तरह से सुखी, समृद्ध एवं निश्चिन्त थे । फिर भी गुणचन्द्र को यदा-कदा मां के प्यार की एवं पिता के स्नेह की स्मृति आ ही जाती थी । वह कुछ चिन्ता में घिर जाता कि मां की एवं पिताजी की क्या हालत होगी । मेरे चले जाने से वे अवश्य चिन्तित एवं दुःखी होंगे । वह कई वार बसन्तपुर जाने का विचार भी करता, किन्तु परिस्थितिवश एवं संकोच से वह वैसा नहीं कर पाया ।

—५—

इधर गुणचन्द्र अपने दाम्पत्य जीवन में आनन्दमग्न

रहता हुआ अपनी कीर्तिपताका फहरा रहा था, तो इधर वसन्तपुर में उसके माता-पिता की हालत बहुत चिन्तनीय हो गई थी। सेठ धनचन्द्र ने आवेश में गुणचन्द्र से कह तो दिया, किन्तु थोड़े ही दिनों में उन्हें अपने बेटे की याद सताने लगी। गुणचन्द्र की मां तो बहुत अधिक विलाप करने लगी। वह कई बार सेठजी से भी झगड़ा कर बैठती कि उन्होंने धन के लोभ में उसके लाल को घर से निकाल दिया। कोई दो-चार बेटे तो थे नहीं, जो धन का बंटवारा करना था। अरे वह एक ही तो था उसकी आंखों का तारा। अब क्या वे इस धन को साथ ले जाएंगे ? वह अनेक बार रो पड़ती और अधीर होकर विलाप करने लगती।

सेठानी की अधीरता देखकर कई बार सेठजी भी विह्वल हो उठते और पश्चात्ताप के स्वर में बोल उठते, "वास्तव में मैंने आवेश में आकर बहुत बड़ी भूल करदी है। मुझे कुछ धैर्य से काम लेना था। कुछ दिन में वह स्वयं ही समझ जाता। अब वह न जाने कहां होगा, क्या करता होगा ? मैंने उसे जाते हुए कुछ भी तो नहीं दिया। हाथ-खर्चा के चार पैसे भी नहीं। हाय ! लाल, तू कहां है ? आजा बेटा ! अब तेरी इच्छा हो उतना दान करना बेटा....!" कह-कहकर सेठजी रोने लगते।

यह क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा। आखिर एक

दिन सेठानी से रहा नहीं गया, उसने कहा—"प्राणनाथ, इस पुत्र-वियोग को अब अधिक नहीं सह सकूंगी....... रोते-रोते मेरी आंखों की रोशनी मन्द पड़ गई है। वृद्धावस्था के चिह्न सामने दिखाई दे रहे हैं। अब आप ही बताइये इस बुढ़ापे में अपनी सेवा करने वाला कौन है ? अब तो आप कृपा करके गुण का पता लगाइये। चारों तरफ अपने आदमियों को भेज दें। मेरी आत्मा कहती है कि वह बहुत पुण्यवान और भाग्यशाली बेटा है। वह जहां भी होगा, सुखी ही होगा। किन्तु वह आपके बुलावे की प्रतीक्षा में है। अतः अब मेरा निवेदन है कि आप अपने नौकरों को सब तरफ भेज दीजिये।" कहते हुए सेठानी ने अपने आंसू पोंछ लिये।

सेठजी स्वयं अपनी भूल का अनुभव कर रहे थे और चिन्ता-ही-चिन्ता में उन्हें कुछ सूझ ही नहीं रहा था कि गुणचन्द्र को पाने के लिए क्या करें। सेठानी का सुझाव तुरन्त उनके दिमाग में जग गया और वे सेठानी को आश्वस्त कर बाहर चले आये। अपने बैठक कक्ष में जाकर उन्होंने मुनीमजी को बुलाया और उनके माध्यम से अनेक नौकरों को एवं अन्य कुछ व्यक्तियों को सूचित करवा दिया कि वे मार्ग-व्यय आदि ले जाएं और सब तरफ खोज करें। गुणचन्द्र जहां भी मिले, उसे हर हालत में सभी शर्तें स्वीकार करते हुए ले आएं।

अनेक व्यक्ति निकट एवं सुदूरवर्ती शहरों को दौड़ पड़े। सभी अपनी-अपनी क्षमता एवं परिश्रम के अनुसार गुणचन्द्र का पता लगाने लगे। अधिकांश व्यक्ति निराश होकर वापस लौट आए और सेठजी को सूचना दे दी कि गुणचन्द्र का कहीं कोई पता नहीं लगा है।

इसी क्रम में भ्रमण करते हुए दो व्यक्ति प्रतिष्ठान-पुर भी पहुंच गये। वहां उन्हें ज्ञात हुआ कि सेठ भागचन्द्र जी के यहां एक नये मुनीम आये हैं, जो दो सौ रुपये रोज दान करते हैं। अब तो वे सेठ भागचन्द्रजी के दामाद बन गये हैं।

बस, दो सौ रुपये प्रतिदिन दान की बात ही उनके लिये पर्याप्त थी। दोनों व्यक्ति खुशी में झूम उठे। एक दूसरे से कहने लगे—"बस, वह व्यक्ति गुणचन्द्रजी के अलावा और कोई नहीं हो सकता है।" सोच करते-करते वे सेठ भागचन्द्र की दुकान पर पहुंच गये। दूर से ही सेठजी की गद्दी पर बैठे गुणचन्द्र पर दृष्टि पड़ी। उनकी प्रसन्नता का पार नहीं रहा। वे बेधड़क दुकान पर चढ़ गये और सीधे गुणचन्द्र के सामने जाकर खड़े हो गये। गुणचन्द्र ने उनका अभिवादन किया और पूछा "पधारिये, आप कहां से पधारे हैं? कोई सेवा हो, तो फरमाइये।"

दोनों व्यक्ति कुछ क्षणों तक तो कुछ बोले नहीं

अपलक गुणचन्द्र को देखते ही रहे । गुणचन्द्र भी अब उन्हें ध्यानपूर्वक देखने लगा । उसे लगा कि ये व्यक्ति तो परिचित हैं और दूसरे ही क्षण उसने उन्हें पहचान लिया और खड़े होकर उनका उचित सम्मान करते हुए कहा— "आओ, कृपाचन्दजी और मंगलदासजी आप यहां कैसे ? कहिये बसन्तपुर से कब और कैसे पधारना हुआ ? वहां सब कुशल-मंगल तो है ? माताजी-पिताजी प्रसन्न तो है ?" एक ही सांस में उसने अपनी जिज्ञासाएं रखदीं आगन्तुकों के सामने ।

दोनों आगन्तुक हर्ष से इतने उत्फुल्ल हो रहे थे कि उनसे कुछ भी बोलते नहीं बन रहा था । गुणचन्द्र अपने आसन से अलग हट गया और उन्हें वहां बैठने का आग्रह करने लगा । उस पर तो नहीं, पर उचित आसन पर वे दोनों बैठ गये । बड़े शान्त भाव से मंगलदासजी पुरोहित ने कहा—"कंवर साहब, आप तो यहां बड़े आनन्द में है । ऐसा लग रहा है, किन्तु वहां सेठ साहब एवं सेठानीजी की जो हालत है, वह हमसे देखी नहीं जाती । दोनों ने रो-रो कर आंखें खराब करली हैं और खाना-पीना छोड़ने से उनका शरीर आधा रह गया है । जोश-जोश में सेठ जी ने आपको निकाल तो दिया, किन्तु थोड़े दिनों बाद ही वे गहरे पश्चात्ताप से भर गये । सेठानीजी की हालत तो इतनी दयनीय है कि कुछ कहते नहीं बनता । सेठ-सेठानी ही नहीं, पूरा बसन्तपुर आपकी याद में झूर

रहा है। वहां का बच्चा-बच्चा आपको पुकारता है। हजारों दीन-दुःखी दुकान पर आ-आकर वापस जाते हैं।

कवर साहब, हमें आश्चर्य और दुःख तो इस बात का है कि इतनी सुख-समृद्धि की स्थिति में होने पर भी आपने कभी अपनी जन्मभूमि एवं माता-पिता को याद नहीं किया। आपने यह भी नहीं सोचा कि जननी-जनक की क्या हालत होगी?" कहते-कहते मंगलदासजी की आंखों से कुछ बूंदें टपक पड़ी। [illegible] जी के नेत्र भी सजल हो गये।

गुणचन्द्र अवाक् भाव से अपनी मातृभूमि के समाचार सुनता रहा। सहसा उसे मातृ-ममता एवं पितृ-स्नेह की स्मृति हो आई। वह भी कुछ भावुक हो उठा। [illegible] लगा—"आप यह न कहें कि मैंने मातृ भूमि एवं माता-पिता को याद ही नहीं किया है। उनकी याद में अनेक बार मैं रातभर रोता रहा हूं। कई बार मैंने [illegible] का विचार भी किया, किन्तु मैं यह चाहता था कि अपनी पूरी योग्यता बनाकर ही जाऊं। वैसे यहां सेठ साहब ने दो सौ रुपये प्रतिदिन की नौकरी दी, किन्तु यह तो आखिर नौकरी ही थी। उस स्थिति में देश लौटने की बात नहीं सोच सकता था। [illegible] साहब ने मुझे अपना दामाद बनाकर बहुत [illegible]

गया है। अतः अब मैं स्वयं विचार कर वसन्तपुर आने
ला था। इसी दृष्टि से मैंने सेठजी के इस प्रस्ताव को
वीकार नहीं किया कि मैं यहीं उनका घर जमाई बनकर
हूं। आप ही सोचिये मातृ भूमि एवं माता-पिता के
पकार को भूल जाता, तो मैं इस प्रस्ताव को अस्वीकार
कैसे करता ?"

इस बार कृपाचन्दजी बोले—"खैर, छोड़ो इस चर्चा
को। हमें तो आप यह बताओ कि अब आप यहां से कब
ल रहे हैं ? हम आपकी खोज में ही आये हैं। सेठजी ने
जाने कितने आदमी दौड़ाएं हैं चारों दिशाओं में। यह
हमारा परम सौभाग्य है कि आप हमें मिल गए।
ब हम आपको साथ लिये बिना यहां से नहीं जायेंगे।"

गुणचन्द्र ने गम्भीर स्वरों में कहा, "अब तो आप के
हने की आवश्यकता ही नहीं है। जब मुझे यह ज्ञात
गया है कि मुझे पिताजी ने याद किया है, तो मैं यहां
क दिन भी रहना कैसे पसन्द करूंगा ? आप चलें,
नान, भोजन से निवृत्त हो लें, तब तक मैं सेठ साहब
बातचीत करके चलने की तैयारी करता हूं। सेठ
ाहब का हृदय इतना उदार एवं महान् है कि वे मुझे
कार नहीं करेंगे।" कहते हुए गुणचन्द्र उठा और दोनों
तिथियों को अपने नवनिर्मित भवन की ऊपरी मंजिल
ले गया। स्नान, आदि की व्यवस्था समझाकर गुण

माला को सूचित किया कि बसन्तपुर से दो मेहमान आ
हैं। उनके लिये भोजन की समुचित व्यवस्था करनी है।
साथ ही संकेत में उसने यह भी बता दिया कि उन्हें भी
यथाशीघ्र बसन्तपुर चलने की तैयार करनी है।

गुणमाला को संकेत कर गुणचन्द्र सेठ भागचन्द्र
के पास आया। अभिवादन-चरण स्पर्श के बाद
विनम्र शब्दों में निवेदन किया—"सेठ साहब, बसन्तपुर
से सन्देश प्राप्त हुआ है कि माताजी-पिताजी मेरे लिये
बहुत चिन्तित हैं और उस चिन्ता में दोनों रुग्ण हो गये
हैं। जो दो व्यक्ति सन्देश लेकर आये हैं, उनका कहना है
कि मुझे अतिशीघ्र बुलाया है। मैं नहीं पहुंचूंगा, तो
माताजी के विलाप को देखते हुए कुछ भी अघटनीय घट
सकता है। अब आप ही फरवाइये, मुझे क्या करना
चाहिए ?"

सेठ भागचन्द्रजी ने ज्यों ही ये अप्रत्याशित समाचार
सुने कि गहरे विचार में डूब गये। उन्हें यह तो कल्पना
भी नहीं थी कि बेटी के विवाह के तुरन्त बाद ही उन्हें
इस तरह विदाई देनी पड़ेगी। विपरीत वे तो इसी भ्रम
में थे कि भले ही घर जमाई न रहें, ये रहेंगे तो यहीं
किन्तु उनकी आशा पर पानी फिर रहा था। उन्होंने
गुणचन्द्र को बैठने का इशारा किया और गम्भीर स्वर
में बोले—"आप अभी यह क्या समाचार लाये हैं ? इस

तो शादी हुई है और अभी जाने की बात ! मुझे तो ऐसा लगा कि जैसे सिर मुंडाया और ओले पड़ गये । अभी आप कहीं जाने का नाम न लें । समय पर मैं स्वयं आपको प्रसन्नता पूर्वक विदा करूंगा ।"

गुणचन्द्र ने बड़े धैर्य के साथ कहा—"सेठ साहब, आप कुछ गम्भीरता से विचार करें ! जिन माता-पिता ने मुझे जन्म दिया, उनके प्रति मेरा क्या कर्तव्य होता है ? आपका उपकार भी महान् है । इसे मैं जन्म भर नहीं भूल सकता । किन्तु अभी परिस्थिति दूसरी है । उधर माताजी अस्वस्थ हैं । ऐसी स्थिति में मैं नहीं पहुंचूं तो क्या यह उचित होगा ? आप यही सोचें कि मैंने अपनी पुत्री की शादी कहीं दूर देश में करदी है, या कर्तव्यपालन हेतु अपने पुत्र को कहीं दूर भेज रहा हूं ।"

कर्तव्य-पालन के तर्क पर सेठजी कुछ विवश हो गए । कहने लगे—"आप यह न सोचें कि बेटी को दूर भेजने से मैं चिन्तित हूं । मुझे बेटी से भी अधिक स्नेह आप से है । मैं आपको अपने पुत्र से भी अधिक प्यार करता हूं । आप जैसे पुण्यशाली पुरुष का वियोग ही मुझे अखर रहा है । पर हां, आपका वह भी कर्तव्य है । आप खुशी-खुशी पधारें । पर इतना अवश्य ध्यान रक्खें कि हमारे बुढ़ापे का सहारा भी आप ही हैं । अतः हमें भी वापस शीघ्र सम्भालें ।"

वापस शीघ्र आ जाने का आश्वासन देकर गुणचन्द्र ने सेठजी से विदा ली और सेठानीजी के पास पहुंचा। उन्हें पूरी स्थिति से अवगत कराया। एक बार तो सेठानी भी कुछ चिन्तित हुई, किन्तु परिस्थिति को समझ कर उन्होंने भी गुणचन्द्र को अनुमति दे दी।

गुणचन्द्र वापस घर आया, तब तक भोजन तैयार हो चुका था। और मेहमान भी स्नानादि से निवृत्त हो चुके थे। सभी ने भोजन किया और गुणचन्द्र एवं गुणमाला जाने की तैयारी करने लगे। अति आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण वस्तुओं को सन्दूक में जमाया। वस्त्र, आभूषण आदि बहुमूल्य पदार्थों को अलग-अलग सन्दूकों में रख कर उन पर ताले लगाए। मार्ग में भोजनादि की व्यवस्था के लिए सम्पूर्ण सामग्री की व्यवस्था कुछ विश्वस्त कर्मचारियों पर डाल दी और उन्हें साथ चलने का संकेत कर दिया।

इस प्रकार पूरी तैयारी करके गुणचन्द्र हैड मुनीमजी आदि सभी कर्मचारियों से मिलने चला गया और गुणमाला अपनी माताजी के पास गई। हैड मुनीमजी, आदि सभी कर्मचारियों ने अपने द्वारा की गई धृष्टताओं के लिये गुणचन्द्र से क्षमा मांगी। गुणचन्द्र हार्दिक और एक सबसे मिला और आश्वस्त किया कि वे उन पुरानी बात को भूल जाएं। उन्होंने कोई बुरा व्यवहार नहीं

किया। सही पूछूं तो उनकी कृपा से ही मुझे मणिपुर देखने को मिला और पारस पत्थर जैसी कीमती वस्तु हाथ लगी।

नगर प्रमुखों से भी मिलकर उनसे शुभ आशीर्वाद लेकर गुणचन्द्र सेठानी जी के पास पहुंचा। सेठानी जी गुणमाला को शिक्षा दे रही थी। गुणचन्द्र को विदाई की पूर्ण तैयारी में देखकर सेठानी की आंखे छलक आयी। अपनी बेटी को सीने से लगाते हुए उन्होंने कहा—"बेटी, मैं अच्छी तरह जानती हूं कि कन्या पराया धन होती है। उसे पितृ-गृह छोड़ कर एक दिन जाना होता है। वही स्थिति आज तुम्हारी भी है। बेटी, तुम जाओ। खुशी-खुशी जाओ। अपना घर बसाओ। खूब फलो-फूलो। पर बेटी, अपने कुल की लाज रखना। मेरे दूध का गौरव बढ़ाना। पति को परमेश्वर एवं सास-ससुर को माता-पिता मानना।" कहते हुए सेठानी फफक-फफक कर रो पड़ी।

गुणमाला भी मां के आंचल में मुंह छिपाये सिसकियां भरने लगी। गुणचन्द्र ने मुंह घुमाकर सजल नेत्रों को पोंछ लिया। कुछ स्वस्थ हो सेठानी ने गुणचन्द्र की ओर अभिमुख होकर कहा—"मैंने आपको एक बेटे की तरह देखा है और अभी भी मैं यही मानती हूं। मेरी दृष्टि में बेटे और जमाई में कोई अन्तर नहीं है। मेरी तो आशाएं थीं कि आप यहीं रह कर हमारी सेवा करेंगे।

किन्तु एक कर्तव्य आपके सामने है। इसलिये मैं अधिक आग्रह नहीं कर सकती। पर आप यह निश्चित समझें कि गुणमाला के वियोग से अधिक दुःख मुझे आपके वियोग का है। आपका जाना आवश्यक है, तो पधारें जाएं। गुणमाला को अच्छी प्रकार से रखें। यह बड़ी सीधी सरल लड़की है। कोई त्रुटि कर बैठे तो प्रेम से समझाते रहें। एक बात का ध्यान रहे, बापस हमें जल्दी ही सम्भाल लें। वहां का कार्य होते ही पुनः शीघ्र यहां पधार आवें।"

गुणचन्द्र ने आश्वासन भरे दो शब्द कहे—"माता जी, आपने जो मातृ-स्नेह मुझे दिया, उसे मैं जन्म भर नहीं भूल सकता। अभी तो मेरा जाना आवश्यक हो गया है। अतः जा रहा हूं, नहीं तो आपको छोड़कर जाने का मन नहीं होता। हां आप कहें, तो इसे (गुणमाला को) यहीं छोड़ जाऊं।"

सेठानी ने कहा—"नहीं, इसे अपने सास-ससुर के दर्शन कब होंगे? अभी आप इसे ले जाएं। वहां से निवृत्त होते ही शीघ्र पधार आवें।"

गुचणन्द्र ने सेठानी के चरण-स्पर्श किये और सजल नेत्रों से विदा ली। गुणमाला भी कुछ क्षणों मां से लिपटी रोती रही। फिर पति का अनुगमन कर चल पड़ी। घर आकर सारा साजो-सामान जमाया। तत्कालीन मर्यादा

के साधन बैलगाड़ियां, घोड़े, ऊंट आदि का काफिला तैयार था। दोनों के लिये एक सुन्दर रथ तैयार था। पच्चीसों नौकर-चाकर एवं कुछ दासियां तैयार थीं। सम्पूर्ण तैयारी के साथ चल पड़े, अपने गन्तव्य की ओर। नगर की बाहरी सीमा तक स्वयं सेठ, सेठानी, मुनीम, नौकर-चाकर एवं गुणमाला की सहेलियां सब विदाई देने आईं। सभी के नेत्रों में अश्रुधारा बह रही थी। सेठ-सेठानी, गुणमाला एवं गुणचन्द्र तो फबक-फबक कर रो रहे थे। कुछ क्षणों तक तो सेठजी ने गुणचन्द्र को और सेठानी ने गुणमाला को सीने से चिपकाए रक्खा। आंसुओं से एक दूसरे के कपड़े गीले करते रहे।

आखिर चलने का समय हुआ, तो गुणचन्द्र एवं गुणमाला ने सब के चरण स्पर्श किये और सब के अन्तर में उठने वाले आशीर्वाद लेकर रथ में जा बैठे। काफिला अपने गन्तव्य की ओर आगे बढ़ा चला। सेठ-सेठानी, आदि सभी नगर-जन रथ के दृष्टि में आने तक वहीं खड़े-खड़े देखते रहे। रथ के आंखों से ओझल हो जाने पर भारी मन से शहर को ओर लौट पड़े।

—६—

गुणचन्द्र का काफिला पड़ाव-दर-पड़ाव आगे बढ़ता गया। मार्ग में जहां कहीं रात्रि विश्राम करते, प्रातः उठते ही दो सौ रुपये ही नहीं, हजारों का दान उसका

नित्यक्रम बन गया। जब पारस पत्थर पास में था, तो कमी किस बात की थी? जहाँ कहीं नगर में से गुजरा, लोहा लिया, सोना बनाया और दान किया। कहीं अच्छे सामाजिक कार्य-कर्त्ता मिले, तो धर्मशाला, विद्यालय, जलाशय, औषधालय आदि के लिये हजारों लाखों के ट्रस्ट कायम कर दिये। इस प्रकार मार्ग में अपनी धवल कीर्ति की सुवास बिखेरते हुए एक महान सेठ की महिमा प्राप्त करते हुए गुणचन्द्र का काफिला बड़े ठाट-बाट के साथ वसन्तपुर की सीमा में पहुँच गया।

कृपाचन्दजी एवं मंगलदासजी, जो काफिले के साथ ही थे, हर्षित-प्रफुल्लित शीघ्र गामी अश्वों पर बैठ कर पहले ही नगर में पहुंच गए। उन्होंने सेठ धनचन्द्र एवं अन्य नगर प्रमुखों को सूचित किया कि गुणचन्द्र जिस ठाठ पूर्ण वैभव से आ रहा है, वह किसी महाराजा से कम नहीं है। यह खबर बिजली की तरह सारे शहर में फैल गई कि घर से खाली हाथों निकला वह लड़का रास्ते भर लाखों रुपये लुटाता आ रहा है। उसकी बराबरी का कोई सेठ हमारे यहां नहीं है।

सेठ धनचन्द्र को और सेठानी को अपने लाल के आने की सूचना मिली, तो वे हर्ष से विह्वल हो उठे। सेठजी ने कृपाचन्दजी एवं मंगलदासजी को बहुत बड़ा पुरस्कार

दिया, और दौड़ पड़े अपनी आंखों के तारे को लाने शहर के बाहर। सेठ ही नहीं, हजारों व्यक्ति गुणचन्द्र के स्वागत हेतु नगर के बाहर आ गए।

गुणचन्द्र ने देखा कि पिताजी के साथ हजारों नगर-जन नगर के बाहर आ गए हैं, तो वे रथ से उतर पड़ा। गुणमाला ने भी उसका अनुगमन किया। कुछ तेज कदमों से चलकर गुणचन्द्र पिताजी के चरणों में गिर पड़ा। सेठजी ने उसे उठाया और सीने से लगा लिया। इस प्रेम-मिलन में सभी की आंखों से हर्ष के अश्रु बह रहे थे। गुणचन्द्र फफक-फफक कर रोता हुआ ही पिताजी से क्षमा-याचना करने लगा—"क्षमा करें पिताजी, मैंने आपको बहुत दुःख दिया। आपको इस हालत में छोड़कर चला गया। क्षमा करें, अपने इस नासमझ बेटे को।" कहते हुए पिताजी के सीने में मुंह छिपा कर सिसकने लगा।

सेठ धनचन्द्रजी को तो अपनी आंखों के तारे के मिल जाने से भान ही नहीं था कि वे क्या बोलें और क्या नहीं? वे तो सिसकियां भरते हुए उसे सीने में भींचते गए। गुणमाला भी सब कुछ देखकर भाव-विभोर हो रही थी। मिलन का वह दृश्य इतना स्नेहिल एवं भाव-पूर्ण था कि उन हजारों व्यक्तियों में शायद ही कोई ऐसा हो, जिसकी आंखें गीली नहीं हों।

कुछ मिनटों में गुणचन्द्र एवं धनचन्द्रजी ...

तो धनचन्द्रजी ने अपना बाहुबन्धन ढीला कर ...
को मुक्त करते हुए कहा—"बेटा, मैं ...
निकाला। मैं पिता कहलाने के लायक नहीं।......
अपने इकलौते लाल को थोड़े से पैसों के लिए ...
सोचे-समझे घर से निकाल दिया।......बेटा तू तो ...
भाग्यशाली है, जो खाली हाथ जाकर भी ...
बनकर आया है। किन्तु मैंने तो अपनी निष्ठुरता में ...
कमी नहीं रक्खी......बेटा, क्षमा कर देना मुझे।"...
कहते हुए सेठ धनचन्द्र पुनः रोने लगे।

गुणचन्द्र ने बड़े विनम्र शब्दों में कहा—"पिताजी, आपने तो मुझे आगे बढ़ने का मार्ग ही बताया है। ... मैं यहां से नहीं जाता, तो मेरे पुरुषार्थ और ... परीक्षा कैसे होती? आपका तो मुझ पर अनन्त ... उपकार है कि आपने मुझे जन्म ही नहीं दिया, मुझे ... भी बनाया।"

इस प्रकार स्नेह पूर्ण मिलन के पश्चात् गुणचन्द्र ... आगत सभी नगर-जनों का अभिवादन किया और ... विशाल जुलूस के साथ नगर-प्रवेश किया। नगर-... की तैयारी उसने बीच के किसी नगर के ... कर ली थी। तदनुसार स्वर्ण मुद्रा एवं स्वर्ण ... वृष्टि मार्ग भर करता रहा। नौकरों के हाथों में ...

तरफ स्वर्ण पुष्पों एवं स्वर्ण मुद्राओं के थाल थे। गुणचन्द्र एवं गुणमाला पूरे राजमार्ग एवं वीथियों में मुक्त हस्त से लुटाते जा रहे थे। पूरे नगर में गुणचन्द्र की दानशीलता की जय-जयकार गुन्जायमान हो रही थी। नारियां छतों एवं झरोखों से सम्पूर्ण दृश्य देखकर पुलकित हो रही थीं।

जुलूस धनचन्द्र के निवासस्थान के बाहर पहुंचा तो गुणचन्द्र ने मकान के बाहर बने चबूतरे पर खड़े होकर अभिवादन किया। एवं जन-मेदनी को विदा कर ममता-मूर्ति, वात्सल्यमयी मां ने मिलने की उत्सुकता से शीघ्र गति से घर में प्रवेश किया। मां को कहां कम उत्सुकता थी? अपने कलेजे की कोर को निहारने के लिये वह व्यग्र थी। वह तो स्वयं आंखें बिछाए खड़ी थी। बाहर जय नादों को सुनकर वह द्वार तक पहुंच कर किवाड़ की ओट में खड़ी-खड़ी निहार रही थी—अपने लाल को। ज्योंही गुणचन्द्र एवं गुणमाला ने अन्दर प्रवेश किया, मां अपने आपको रोक नहीं सकी। गुणचन्द्र मां के चरण-स्पर्श को आगे बढ़ा कि झुकने के पूर्व ही मां ने उसे अपने सीने से चिपका लिया और सिसकियां भरती हुई अपने लाल के कपड़ों को आंखों के पानी से भिगोने लगी। किन्तु अधिक समय तक वह उसे अपने अंग में नहीं छिपा सकी। गुणमाला ने आगे बढ़कर चरण-स्पर्श किया, तो गुणचन्द्र को छोड़कर उसने गुणमाला को अपने

अंग में छिपा लिया। उस भावपूर्ण मिलन दृश्य से आस-पास खड़े सभी नौकरों-चाकरों एवं आगन्तुकों के नेत्र सजल हो गए। सेठजी भी पास खड़े-खड़े सजल नेत्रों से सभी दृश्य देखते रहे।

कुछ क्षणों से स्वस्थ हो सभी बैठक कक्ष में चले आए। गुणचन्द्र ने अपनी यात्रा, सेठ भागचन्द्रजी की उदारता, विवाह एव पारस पत्थर प्राप्ति, आदि का संक्षिप्त वर्णन किया। सेठ-सेठानी टकटकी लगाए सुनते रहे और मन ही मन पुत्र की प्रतिज्ञा पालन की दृढ़ता एवं पुरुषार्थ से आनन्दित एवं पुलकित होते रहे। साथ ही सेठजी अपने कृत्य पर पश्चाताप भी कर रहे थे। वे सोचने लगे कि कहां तो सेठ भागचन्द्रजी, जो बिना जान-पहचान के दो सौ रुपये प्रति दिन देने लगे, और बेटे-सा प्यार दिया और कहां मैं, जो अपने इकलौते बेटे की प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर सका।

अपनी पूरी कहानी सुनाने के पश्चात् गुणचन्द्र ने पिताजी-माताजी को कहा—"अब आप को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी है। यद्यपि अपने पास पारस पत्थर जैसी बहुमूल्य मणि है, किन्तु मैं उसके सहारे जीकर अकर्मण्य नहीं बनना चाहता हूं। जब कभी देश पर कोई संकट आएगा, तो उसका उपयोग करूंगा। अन्यथा अपने श्रम से ही अपना व्यवसाय चला कर

प्रतिष्ठा अर्जित करूंगा। आप सब धर्म-साधना में लगें। बाकी सारे काम-काज मैं देख लूंगा। आपने अपनी उम्र के अनुसार बहुत कुछ किया है। अब आपकी उम्र साधना के लिए ही है। घर का सारा कार्य गुणमाला देख लेगी, और बाहर का मैं। आप दोनों तो निश्चित साधनामय जीवन बनालें। बस हम पर आशीर्वाद की दृष्टि बनाये रखें।

पुत्र के मृदुल एवं गम्भीरतापूर्ण विचारों को सुनकर सेठ-सेठानी अत्यन्त हर्षित हुए। इस लघुवय में उसके विचारों की महानता से दोनों गद्गद् थे। उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य निश्चित कर लिया।

—७—

अब गुणचन्द्र व्यापारादि का पूरा कार्य देखने लगा। उसने सेठ धनचन्द्रजी को धर्म-साधना के लिये पूर्णतया मुक्त कर दिया, तो गुणमाला ने घर की सारी व्यवस्था अपने हाथ में लेकर सेठानी जी को साधना के लिये मुक्त कर दिया। सेठ-सेठानी दोनों श्रावक-धर्म के बारह व्रत स्वीकार करके आत्म-उपासना में लीन रहने लगे और इसी आराधना-उपासना के क्रम में उन्होंने कालान्तर में सद्गति प्राप्त की।

इधर के कार्यों को व्यवस्थित करके गुणचन्द्र प्रतिष्ठानपुर की व्यवस्था भी देखता रहा। उसने सेठ

भागचन्द्र जी एवं सेठानी को भी धर्माराधना की प्रेरणा देकर उन्हें व्यवसायादि से निवृत्त कर दिया ।

इसी कार्य काल में गुणचन्द्र को पुत्र-रत्न की प्राप्ति भी हो गई । नाम रखा—गुणवन्तकुमार । घर-आंगन नन्हें-मुन्ने की किलकारियों से भर गया । कुलदीपक को देख-देखकर पति-पत्नी प्रफुल्लित रहते । व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक शिक्षण के साथ ही उत्तम गुणों का सर्जन उसमें नैसर्गिक ही था । ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता गया, अपने नाम के अनुरूप ही उसमें गुणों की वृद्धि होती गई । दान के संस्कार तो उसे पैतृक रूप में धरोहर में ही मिले थे । परिणामतः अपने साथियों की यथायोग्य सहायता करना उसके स्वभाव का अंग था । सब मिलाकर योग्य पिता की सुयोग्य सन्तान की सूक्ति वह सार्थक करने लगा ।

जब गुणचन्द्र एवं गुणमाला ने देखा कि पुत्र योग्य हो चुका है, तो दोनों ने धर्मजागरण के समय निश्चय किया कि अब इसे विवाह-सूत्र में बांध कर सारा दायित्व इस पर डालें और हम आत्म-साधना में लगें । मानव जीवन का जो उद्देश्य होना चाहिये, अब अवसर आ गया है, कि हम उस उद्देश्य के प्रति सजग हो जायें और जीवन को साधनामय बनाकर सफल बनायें ।

विचारों को मूर्त्तरूप देने के लिये गुणचन्द्र ने अपने

संस्कार-सम्पन्न कन्या की खोज प्रारम्भ कर दी। वैसे सैकड़ों सम्बन्ध गुणवन्त के लिये आ रहे थे। किन्तु गुणचन्द्र गुणवती कन्या की खोज में था। आखिर एक दिन सेठ लक्ष्मीचन्द्र जी की संस्कार सम्पन्न गुणवती कन्या सुप्रीति का संयोग उसे मिल गया और गुणवन्त का विवाह बड़े धूम-धाम के साथ सम्पन्न हो गया।

धीरे-धीरे गृहस्थी एवं व्यवसाय का सम्पूर्ण दायित्व पुत्र-वधू एवं पुत्र को सम्भलाकर गुणचन्द्र एवं गुणमाला सात्विक रूप से श्रावक-श्राविका के बारह व्रतों की आराधना करने लगे। उनका अधिकांश समय स्वाध्याय, चिन्तन, मनन एवं ज्ञानाराधना में ही व्यतीत होने लगा। कई बार दोनों तत्त्वज्ञान की अत्यन्त सूक्ष्म चर्चा में उतर जाते और शास्त्रार्थ की गम्भीर स्थिति में पहुंच जाते।

एक दिन दोनों में जमकर ज्ञान-चर्चा चल रही थी। विषय था—पुण्य और धर्म का। गुणचन्द्र ने कहा—"पुण्य के बिना संसार में कुछ नहीं हो सकता है। पुण्य के प्रभाव से ही व्यक्ति अलभ्य अवसर एवं अनुपम सम्पदा प्राप्त करता है। पुण्य के प्रताप से ही मानवता, निरोगी देह, स्वस्थ इन्द्रिया एवं उत्तम कुल, आदि की प्राप्ति होती है। मैं जो आज इस स्थिति तक पहुंचा, दुनिया में इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त की, पारस मणि जैसी

दुर्लभ वस्तु मिली। क्या यह सब पुण्य का फल नहीं है? अतः पुण्य सर्वथा उपादेय है।"

गुणमाला भी तत्त्वज्ञान में कम नहीं थी। उसने भी अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया था। अनेक आचार्यों के प्रवचन सुने थे। उसने कहा—"आपका यह कथन एकान्त सत्य नहीं माना जा सकता। यह ठीक है कि समस्त भौतिक वैभव पद-प्रतिष्ठा सब कुछ पुण्य के द्वारा ही प्राप्त होते हैं। फिर भी जीवन में भौतिक सुख-सुविधा ही तो सब कुछ नहीं है। ये पद-प्रतिष्ठा के आकर्षण तो इस जन्म तक ही सीमित हैं। इनके द्वारा शाश्वत आनन्द कितना मिलता है? भौतिक सुख भी दुःख मिश्रित होता है। सुख के साथ दुःख भी लगा रहता है। अतः पुण्य सर्वथा उपादेय नहीं है, धर्म उपादेय है। पुण्य को एक स्थिति पर जाकर छोड़ना पड़ता है। [illegible] एकान्त रूप से उपादेय नहीं माना है। पुण्य और धर्म में यही अन्तर है कि पुण्य भौतिक समृद्धि प्रदान करता है और धर्म आध्यात्मिक समृद्धि—आत्म शान्ति।

'आप यह सोचें कि आपको यह सब समृद्धि पुण्य के प्रभाव से मिली। किन्तु यह समृद्धि आपको सुख-प्रतिष्ठा से अधिक क्या प्रदान करती है? मैं तो यह सोचती हूं कि आपको जो कुछ मिला, वह त्याग के द्वारा से मिला। दो भी स्वयं प्रतिदिन दान की [illegible]

का परिणाम है यह अपार वैभव । वह त्याग आप नहीं करते, तो आप दान नहीं देते और दान के बिना पुण्य संचय नहीं होता। अतः मूल तो त्याग ही रहा और त्याग को ही धर्म कहा है।

"पुण्य को तेरहवें गुणस्थान तक उपादेय कहा है, उसके बाद पुण्य हेय हो जाता है। शास्त्रकारों ने पुण्य को नौका की तरह माना है। नौका की आवश्यकता नदी पार न हो, तब तक है। नदी पार हो जाने पर फिर नौका से चिपके रहना नासमझी मानी जाती है। ठीक उसी प्रकार से मोक्ष-प्राप्ति के पूर्व तक पुण्य भी आवश्यक रूप से उपादेय है, उसके बाद नहीं। किन्तु धर्म सदा उपादेय ही रहता। आप सोचिये—दो सौ रुपये के प्रतिदिन के त्याग ने आपके जीवन को आनन्द से कितना भर दिया। यह परम्परा से त्याग अर्थात् धर्म का ही प्रभाव है।"

दो सौ रुपये प्रतिदिन त्याग एवं उसके द्वारा प्राप्त आनन्द की चर्चा ने गुणचन्द्र के चिन्तन को एक नया मोड़ दे दिया। वह एक गहरे चिंतन में खो गया। दो सौ रुपये के त्याग ने मुझे इतने आनन्द से भर दिया, तो सम्पूर्ण भौतिक वैभव का त्याग कितना अतुलित आनन्द दे सकता है? सहसा उसने कहा -"गुणमाला! तुम्हारा दृष्टिकोण एकदम यथार्थ है-पुण्य एक सामान्य तत्त्व है—

धर्म के समक्ष । धर्म महान् है । त्याग महान् है । तुम्हारे इस विवेचना से मुझे अब यह समस्त वैभव, पद-प्रतिष्ठा फीके लगने लगे हैं । इन क्षणिक सुखद संयोगों में क्या हम अपना पूरा जीवन खो देते हैं ? मेरा चिन्तन चल रहा है कि जब दो सौ रुपये प्रतिदिन के दान से मुझे इतने भौतिक वैभव के साथ आत्मिक आनन्द भी मिला है, तो यदि मैं सम्पूर्ण वैभव का त्याग कर दूं, तो क्या वह मुक्ति का सच्चा और शाश्वत आनन्द नहीं मिल सकता ?

"प्रिये ! अब मैं अपनी इस पिछली अवस्था को पूर्णतया साधना में लगा देना चाहता हूं । मैं संयम ग्रहण कर आत्म-कल्याण करना चाहता हूं । बोलो तुम्हारा क्या अभिमत है ?"

"प्राणनाथ ! संयम से बढ़कर इस जीवन की सार्थकता और क्या हो सकती है ? मनुष्य-जीवन तो साधना के लिये प्राप्त होता है । मैं तो बहुत समय से इसी चिन्तन में थी कि उचित अवसर देखकर आपकी सेवा में निवेदन करूं और हम दोनों साधना-दीक्षा का अनुगमन करें । आज सहज आपके भाव प्रकट हो गए । अब और क्या चाहिये ? पुत्र गुणसेन एवं पुत्रवधुओं को समझाकर उनकी आज्ञा प्राप्त कर हम भागवती दीक्षा ग्रहण कर लें ।"

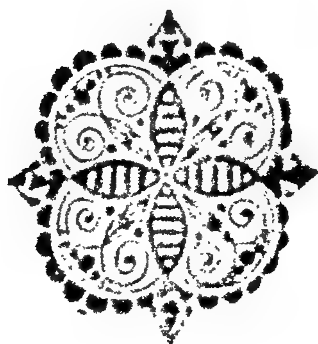
यह एक अद्‌भुत संयोग ही था कि इधर गुणचन्द्र और गुणमाला दीक्षा का चिन्तन कर रहे थे और उधर नगर पथ में यह चर्चा फैल रही थी कि आचार्य विमल कीर्ति के पट्टधर शिष्य महान् विद्वान् आचार्य श्रुतकीर्ति का एवं साध्वी प्रज्ञावती का अपने शिष्य-शिष्या परिवार सहित वसन्तपुर में आगमन हुआ है। जैसे कि दोनों के विचारों का सम्मेलन बेतार के तार द्वारा हो गया हो और आचार्य श्री एवं साध्वी जी को यहां आने को विवश कर दिया हो।

आचार्य प्रवर एवं साध्वी प्रवरा के आगमन का संवाद ज्योंही गुणचन्द्र एवं गुणमाला ने सुना, उसके आनन्द की सीमा नहीं रही। वे तुरन्त अपना रथ सजवा कर दर्शन-वन्दना एवं प्रवचन-श्रवण हेतु चले गए। इधर उपादान तैयार था और उधर आचार्य प्रवर श्री श्रुत कीर्ति के वैराग्योत्पादक प्रभावक प्रवचन का निमित्त मिल गया। दोनों की अन्तर्ज्योति जगमगा उठी।

घर आकर पुत्र गुणवन्त को समझाकर दोनों ने आज्ञा प्राप्त की और विशाल जन-मेदिनी के साथ नगर की वीथियों में लाखों का धन बिखेरते-लुटाते दान करते आचार्य प्रवर के चरणों में पहुंच गए। दोनों ने आचार्य प्रवर के समक्ष संयम-साधना की भावना प्रदर्शित की और दीक्षा हेतु प्रस्तुत हो गए।

आचार्य श्री ने सामान्य जिज्ञासा-समाधान के [illegible] उन्हें वीतराग शासन में दीक्षित कर दिया । अब वे गुणचन्द्र मुनि गुणचन्द्र बन गए और सेठानी गुणमाला साध्वी गुणमाला बन गई । मुनि गुणचन्द्र आचार्य श्री की सन्निधि में एवं साध्वी गुणमाला साध्वी [illegible] के सान्निध्य में ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना में तल्लीन हो गए ।

अनेक वर्षों तक विशुद्ध चारित्र-आराधना में [illegible] रहकर विविध ज्ञानाराधना एवं तप साधना से [illegible] अपनी आत्मा को भावित करते रहे तथा जीवन के अन्तिम दिनों में अपनी आत्मा को केवल ज्योति से आलोकित कर दोनों सिद्ध बुद्ध-मुक्त हो गए, मानव-जीवन के चरम लक्ष्य, परम आनन्द शान्ति को [illegible] हो गए ।



दो सौ रुपये का चमत्कार

शुद्धि पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
प्रा. पृ. २	११	जन	जैन
१	१	मैं नहीं	मैं ही नहीं
१	१०	को लिखते	को कहानी लिखते
२	१७	कहानियां	कहानियों
७	१२	सवत्यागी	सर्वत्यागी
७	१६	से	के
८	३	है है	है
८	४	अग	अंग
८	११	को	की
८	१४	सविभाग	संविभाग
६	१६	छाड़	छोड
६	१६	आतक	आतंक
६	१७	आतक	आतंक
११	१५	श्रेष्ठ	श्रेष्ठि
१२	२	चातकवत	चातकवत्

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	[illegible]
१२	६	होग	होगा
१४	८	है	है
१४	८	माल उतार	माल के [illegible]
१५	६	आशीवार	आशीर्वाद
१६	१३	पहुचते	पहुँचते
१६	२०	प्रशसा	प्रशंसा
१६	२०	बाधने	बांधने
१७	४	मे	में
१७	६	वानको	बालकों
१७	२२	है	है
१८	१५	उठे	उठें
२०	६	रेखाए	रेखाएं
२०	१२	है ?'	है [illegible]
२१	३	निकानवा	निकलवा
२१	१६	हूगा ।	हूँगा ।
२२	२	है ?'	है [illegible]
२२	१४	चाहिये	चाहिये,
२३	१८	कहा, पिताजी	कहा, "पिताजी
२५	७	मान	मानें
२५	२१	रग	रंग
२७	५	नही ।	नहीं ।
२७	८	समाप्त	समाप्त,

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२९	१६	पिताजी	"पिताजी
२९	२०	नहीं ?	नहीं ?"
३१	१७	करूं ।'	करूं ।"
३४	१८	सकूं ।	सकूं ।"
४०	१०	काय	कार्य
४०	१२	पकिगं	पेकिंग
४१	५	सौम्याक्रत	सौम्याकृति
४१	८	है ।	है
४५	६	"गुणचन्द्र	गुणचन्द्र
४७	२	है ?	है ?"
४८	३	"प्रसन्न	प्रसन्न
५५	२०	है ?	है ?"
५८	१२	महानता रही	महानता बता रही
६०	१८	सच्चरित्ता	सच्चरित्रता
६३	१४	मुभ	मुझे
७१	७	काज	कर्ज
८५	२२	दें ।	दें ।'
८७	६	क्या ?	क्या ?"
८८	१९	खच	खर्च
८९	४	जा	जो
८९	१०	बैंने	बैंने
९९	२	सठ	सेठ

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९६	२	शोन	शोने
९६	५	उसन	उसने
९६	५	चमत्कारी	चमत्कार
९६	७	न	ने
९६	११	पुत्र	[illegible]
९६	१४	भा	भी
९६	१५	काय	कार्य
९६	१८	चुका	चुकी
९६	२२	सेठजा	सेठजी
९७	२	किसी चीज की	किस चीज का
१०२	१२	सेठानी पूर्ण	सेठानी ने पूर्ण
१०३	८	कर	का
१०७	१०	मोन	मौन
१११	१६	जग	जाग
११३	१५	बड़	बड़े
११३	१५	है	हैं
११४	४	[illegible]	[illegible]
११८	९	ग	मे
११८	९	नुंद	बूंद
११८	१४	कि	कि
११८	१६	गानगार	[illegible]
११८	१८	जाऊ	जाऊं

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११४	१८	वस	वैसे
११४	१८	मुझ	मुझे
११४	१६	प्रतादन	प्रतिदिन
११४	१६	ददी ह	देदी है
११६	१३	फग्माइये	फरमाइये
११६	६	वड़	बड़े
११६	२	जसी	जैसी
११६	५	पहचा	पहुँचा
११६	८	आग्व	आँखें
११६	१४	का	की
११६	२१	आभमुख	अभिमुख
१२०	६	आव	जावें
१२०	१७	दशन	दर्शन
१२०	१७	होगे	होंगे
१२०	१८	आवें	जावें
१२१	४	पड़	पड़े
१२१	१५	वढ़ा	वढ़
१२३	५	वे	वह
१२४	१३	ता	तो
१२५	२३	का	को
१२६	१	अंग	अंक
१२६	५	मे	में

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२६	७	एव	एवं
१२७	५	निश्चित	निश्चित
१२७	७	रता	रत
१२७	८	एव	एवं
१२७	१०	मे	में
१२७	१३	पूर्णतया	पूर्णतया
१२७	१६	धम	धर्म
१२८	७	शिक्षाणक साथ	शिक्षक के साथ
१२८	८	संस्कारों का सजन	संस्कारों का सर्जन
१२८	८	नसर्गिक	नैसर्गिक
१२८	११	सस्कार	संस्कार
१२८	१४	श्रम था	श्रम था
१२८	१५	साधक	साधक
१२८	२१	साजन हो जाय	साधन हो जाय
१२९	२०	इन्द्रिया	इन्द्रियां
१२९	२१	प्राप्त होता है	प्राप्त होता है
१२९	२२	पारस मणि जसी	पारस मणि जैसी
१३०	१	दुलभ	दुर्लभ
१३१	४	धम	धर्म
१३२	३	गंगाओं मे	गंगाओं में
१३२	१९	अनुगम करें	अनुगमन करें